तहरीके-इस्लामी

कामयाबी की शर्तें

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

विषय-सूची

दो शब्द	5
व्यक्तिगत ख़ूबियाँ	10
इस्लाम की सही समझ	10
इस्लाम पर पक्का ईमान	11
सीरत और किरदार	12
दीन–मक़सद की हैसियत से	13
इज्तिमाई ख़ूबियाँ	15
भाईचारा और मुहब्बत	15
आपस में सलाह-मशवरा	15
अनुशासन (Discipline)	16
सुधार के लिए तंक़ीद (आलोचना)	17
तकमील तक पहुँचानेवाली ख़ूबियाँ	19
अल्लाह से ताल्लुक़ और इख़लास (निष्ठा)	20
आख़िरत की फ़िक्र	20
अच्छी सीरत और किरदार	21
सब्र और जमाव	22
हिकमत और गहरी सूझ-बूझ	24
एक ग़लत फ़हमी	26
बुनियादी ख़राबियाँ	29
घमण्ड	29
बन्दगी का एहसास	30
अपना जाइज़ा लेना	31

अच्छे लोगों पर नज़र 31
दिखावा 32
हर शख़्स की अपने तौर पर कोशिश 34
इज्तिमाई कोशिश 34
नीयत का खोट 35
इनसानी कमज़ोरियाँ 38
ख़ुदपरस्ती 38
ख़ुदपसन्दी 39
तौबा-इस्तिग़फ़ार 41
सच बात बोलना 43
ईर्ष्या और जलन 43
बदगुमानी 44
ग़ीबत (पीठ-पीछे बुराई करना) 45
चुग़लख़ोरी 47
खुसर-फुसर और कानाफूसियाँ 47
मिज़ाज की बेएतिदाली (असन्तुलन) 51
एक-रुख़ापन 53
इन्तिहापसन्दी 53
इज्तिमाई बेएतिदाली 54
तंगदिली 57
इरादे की कमज़ोरी 59

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

दो शब्द

जो लोग संजीदगी के साथ यह चाहते हैं कि देश में एक आदर्श सामज वुजूद में आए, उन्हें सबसे पहले जो बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए वह यह है कि हमारी क़ौम में इसके लिए ख़ाहिश की कोई कमी नहीं। अस्ल कमी इसके लिए तैयार होने की और उससे भी ज़्यादा कमी कार्य-कुशलता की है। ज़्यादातर लोगों में वे बुनियादी ख़ूबियाँ भी नहीं हैं, जिनका होना इस काम के लिए ज़रूरी है। दूसरी बात, जिसपर निगाह रखनी चाहिए, यह है कि हमारी क़ौम के अन्दर जितने प्रभावशाली तत्व पाए जाते हैं वे ज़्यादातर बिगाड़ के लिए काम कर रहे हैं और जो बिगाड़ने में लगे हुए नहीं हैं वे सँवारने की फ़िक्र भी नहीं रखते, सुधारने और बनाने के लिए कोशिश करनेवालों की तादाद आटे में नमक के बराबर है। तीसरी बात जिससे ग़ाफ़िल न रहना चाहिए यह है कि मौजूदा दौर में इज्तिमाई ज़िन्दगी को बनाने और बिगाड़नेवाली सबसे बड़ी ताक़त हुकूमत है, और जिस जगह लोकतांत्रिक व्यवस्था लागू हो वहाँ हुकूमत के सही या ग़लत होने का सारा दारोमदार इस बात पर है कि आम जनता सही आदमियों के हाथों में सत्ता सौंपती है या ग़लत आदमियों के हाथों में। बिगाड़ के लिए काम करनेवाले तमाम लोग किसी दूसरे काम पर इतनी ताक़त नहीं लगाते जितनी इस सिलसिले में आम लोगों को बहकाने में लगाते हैं, ताकि वे कभी सही चुनाव करने के क़ाबिल न हो सकें।

ये तीन हक़ीक़तें मिल-जुलकर एक ऐसा भयानक दृश्य पेश करती हैं कि एक बार तो उसे देखकर आदमी का दिल बैठ जाता है और वह निराशा में डूबकर सोचने लगता है कि यहाँ कुछ बनाए भी बन सकेगा या नहीं? लेकिन इसके मुक़ाबले में कुछ हक़ीक़तें ऐसी भी हैं जिन्हें निगाह में रखने से मायूसी के बादल छँटने लगते हैं और उम्मीद की किरणें चमकने लगती हैं। पहली

हक़ीक़त यह है कि हमारा समाज सिर्फ़ बिगाड़ फैलानेवालों ही से भरा हुआ नहीं है, बल्कि इसमें कुछ अच्छे और सुधार-पसन्द लोग भी मौजूद हैं। उनके अन्दर सुधारने और बनाने की सिर्फ़ ख़ाहिश ही नहीं बल्कि वे इसके लिए तैयार भी हैं और कुछ करने की सलाहियत (क्षमता) भी रखते हैं और अगर उनमें कुछ कमी है तो वह थोड़ी-सी तवज्जोह और कोशिश से पैदा की जा सकती है। दूसरी हक़ीक़त यह है कि अगर कुल मिलाकर देखा जाए तो हमारी क़ौम बुराई-पसन्द नहीं है, अनजाने में वह धोखा खा सकती है और खा रही है, लेकिन वह इस बिगाड़ पर राज़ी नहीं है जो धोखा देनेवालों के हाथों पैदा होता है, अगर हिकमत और सूझबूझ के साथ संगठित रूप से और लगातार कोशिश की जाए तो यहाँ के जनमत को सुधारवादी ताक़तों का समर्थक बनाने में आख़िरकार कामयाबी होकर रहेगी। मायूसी सिर्फ़ इस हालत में हो सकती थी कि क़ौम के ज़्यादातर लोग ख़ुद इन बुराइयों के तलबगार होते, जो समाज में बिगाड़ पैदा करनेवाली ताक़तों के ग़लबे से बरपा हो रही हैं। तीसरी हक़ीक़त यह है कि बिगाड़ के लिए काम करनेवालों को सब कुछ हासिल है मगर दो चीज़ें उनके पास नहीं हैं, एक सीरत और किरदार की ताक़त और दूसरे एकता और मतैक्य की ताक़त।

आख़िरी और सबसे अहम हक़ीक़त यह है कि दीन को क़ायम करने का काम अल्लाह का अपना काम है और इसके लिए जो लोग भी कोशिश करें उनको अल्लाह का समर्थन हासिल होता है। शर्त यह है कि वे ख़ुलूस (निष्ठाभाव) और सब्र के साथ काम करें और हिकमत और सूझबूझ की ओर से लापरवाह न हों। ऐसे लोगों की तादाद चाहे कितनी ही कम हो और उनके पास चाहे कितने ही कम संसाधन हों, आख़िरकार अल्लाह की मदद हर कमी पूरी कर देती है।

मायूस करनेवाले ज़ाहिर के पीछे उम्मीद का यह सरोसामान है जो ढाढ़स बँधाता है कि देश में एक आदर्श समाज का वुजूद मुमकिन ही नहीं बल्कि वह कामयाब भी हो सकता है। अलबत्ता ज़रूरत जिस चीज़ की है वह यह है कि जो लोग भी इस काम की सच्ची ख़ाहिश रखनेवाले मौजूद हैं वे आरज़ुओं और तमन्नाओं की मंज़िल से निकलकर कुछ करने के लिए आगे

बढ़ें और उन तरीक़ों से काम करें जो अल्लाह की सुन्नत (क़ुदरती उसूलों) के मुताबिक़ कामयाबी के लिए मुक़र्रर हैं। अल्लाह की सुन्नत यह नहीं है कि आप बस ख़राबियों की आलोचना करते रहें और वे सिर्फ़ आपकी बातों से दूर हो जाएँ। जंगल का एक काँटा और रास्ते का एक रोड़ा भी अपनी जगह से नहीं हटता जब तक आप हाथ-पाँव न हिलाएँ। फिर भला समाज में मुद्दतों की रची-बसी ख़राबियाँ सिर्फ़ उन्हें बुरा-भला कहने से कैसे दूर हो जाएँगी। गेहूँ का एक दाना भी किसान की मेहनत के बिना पैदा नहीं होता, फिर कैसे उम्मीद की जा सकती है कि समाज में भलाइयों की खेती बस दुआओं और तमन्नाओं से लहलहाने लगेगी। आलोचनाएँ कारगर होती हैं मगर उस वक़्त जबकि भौतिक संसाधनोंवाले इस जगत् में हम अपने करने का काम पूरा कर दें और फिर उसके कामयाब होने के लिए अल्लाह से दुआएँ माँगें। फ़रिश्ते बेशक उतरते हैं मगर ख़ुद से लड़ने के लिए नहीं, बल्कि उन सच्चाई पर चलनेवालों की मदद के लिए उतरते हैं जो ख़ुदा की राह में जानें लड़ा रहे हों, तो जो लोग भी अमल के लिए कोई इरादा अपने अन्दर रखते हों उन्हें ग़लत और बेबुनियाद उम्मीदों को छोड़कर ठण्डे दिल से इस काम के तक़ाज़ों को समझना चाहिए और फिर ख़ूब सोच-समझकर फ़ैसला करना चाहिए कि उन्हें यह काम करना है, या फिर बिगाड़ पर रोने-धोने और बनाव की आरज़ू दिल में पालने पर बस करना है। अमल का फ़ैसला जिसे भी करना हो जोश में आकर नहीं बल्कि ठण्डे दिल से सोच-समझकर करना चाहिए। वक़्ती जोश में यह ताक़त तो ज़रूर है कि आदमी उठे और सीने पर गोली खाकर जान दे दे, लेकिन उसमें यह ताक़त नहीं है कि आदमी को चार दिन भी किसी एक बुराई से बचने या एक भलाई के करने पर क़ायम रख सके, यह तो बहुत दूर की बात है कि इसके बलबूते पर कोई शख़्स उम्र भर एक मक़सद के पीछे लगातार मेहनत करता चला जाए। बनाव का काम सिर्फ़ वही लोग कर सकते हैं जिनका सोचा-समझा फ़ैसला यह हो कि अपनी प्यारी उम्र इसी काम में खपानी है।

अमल के लिए तैयार होने के बाद लोग आम तौर से कार्य-नीति के सवाल पर आ जाते हैं, वे कहते हैं कि "अच्छा, हमने काम का फ़ैसला कर

लिया। अब बताइये कि वह प्रोग्राम क्या है जिसपर हम काम करें।" लेकिन वे भूल जाते हैं कि काम के फ़ैसले और प्रोग्राम के दरमियान काम का मर्कज़ ख़ुद काम करनेवाला है, जिसको नज़र-अन्दाज़ करके काम और प्रोग्राम की बातें शुरू कर देना सही नहीं है। यह समझना ग़लत है कि काम के लिए सिर्फ़ उसका इरादा काफ़ी है जिसके बाद बस प्रोग्राम बनाने ही की ज़रूरत बाक़ी रह जाती है। इसी ग़लत-फ़हमी की बुनियाद पर हमारे यहाँ बड़े-बड़े काम शुरू हुए और आख़िरकार मनचाहे नतीजे तक पहुँचने में नाकाम होकर रह गए। अस्ल चीज़ प्रोग्राम और स्कीम नहीं, बल्कि इसके चलानेवाले लोग हैं, उनकी ख़ूबियाँ एक-एक शख़्स की ज़ाती ख़ूबियाँ भी हैं और सबकी इज्तिमाई ख़ूबियाँ भी। वे अस्ल ताक़त हैं जो इस बात का फ़ैसला करती हैं कि इस स्कीम या प्रोग्राम को कामयाब होना है या नाकाम। उनकी हर कमज़ोरी नतीजों पर असर डालती है और हर ख़ूबी अपना रंग दिखाती है। वे अच्छी ख़ूबियों के मालिक हों तो एक ग़लत स्कीम और बुरे प्रोग्राम को भी एक बार तो इस तरह चलाकर दिखा देते हैं कि दुनिया दंग रह जाती है, इसके बरख़िलाफ़ अगर उनकी सलाहियत में कमी हो तो बेहतर काम भी बिगड़ जाता है, यहाँ तक कि दुनिया को ख़ुद उस काम के सही होने में भी शक हो जाता है जिसे अमल में लाने के लिए निकम्मे लोग मिले हों। इसलिए हमें बनाव और सुधार की अमली तजवीज़ों (प्रस्तावों) पर ग़ौर करने से पहले यह देखना चाहिए कि इस काम के लिए जो लोग आगे बढ़ें उनमें कौन-सी सलाहियतें और ख़ूबियाँ होनी चाहिएँ, और यह कि इस तरह के आदमियों की तैयारी के ज़रिए क्या हैं?

आगे के पृष्ठों में हम इस बात को नीचे दी गई तरतीब (क्रम) से बयान करेंगे :

1. वे ख़ूबियाँ जो इस मक़सद के लिए काम करनेवाले हर शख़्स में ख़ुद होनी चाहिएँ।
2. वे ख़ूबियाँ जो उनके अन्दर जमाअत की हैसियत से होनी चाहिएँ।
3. वे ख़ूबियाँ जो दीन (इस्लाम) की दावत देने, इस्लाम का पैग़ाम पहुँचाने और दीन को क़ायम करने की जिद्दोजुहद में कामयाब होने के लिए

ज़रूरी हैं।

4. वे बड़ी-बड़ी बुराइयाँ जिनसे उनको अलग-अलग भी और एक जमाअत की हैसियत से भी पाक होना चाहिए।
5. वे तदबीरें जिनसे ज़रूरी ख़ूबियों के फलने-फूलने और ख़राब आदतों से लोगों और जमाअत को पाक करने में मदद ली जा सकती है।

दुनिया में अमली तौर से इस्लामी जीवन-व्यवस्था क़ायम करने के लिए अल्लाह तआला की मदद के बाद दूसरी सबसे ज़्यादा अहम चीज़ जिसपर कामयाबी का दारोमदार है वह इस काम की कोशिश करनेवालों की अपनी ख़ूबियाँ हैं। ये ख़ूबियाँ ऐसी हैं जो अलग-अलग तौर से उनमें से हर शख़्स में होनी चाहिएँ। चन्द दूसरी ख़ूबियाँ उनके अन्दर इज्तिमाई तौर पर पाई जानी चाहिएँ। कुछ और ख़ूबियाँ सुधार और बनाव का काम करने के लिए ज़रूरी हैं और कुछ बुराइयाँ ऐसी हैं जिनसे अगर वे अपने आपको बचाकर न रखें तो उनके सारे किए-धरे पर पानी फिर सकता है। इन बातों को सबसे पहले ज़ेहन में बैठ जाना चाहिए ताकि वे लोग, जो इस काम का सच्चा जज़बा रखते हैं, अपने अन्दर काम के लिए ज़रूरी ख़ूबियों को बढ़ाने और ख़राब आदतों से अपने आपको पाक करने की तरफ़ ख़ास तौर से ध्यान दें। समाज को बनाने के लिए ख़ुद को सँवारना पहली शर्त है क्योंकि जो ख़ुद न सँवरे वह दूसरों को सँवारने के लिए कुछ नहीं कर सकता।

व्यक्तिगत ख़ूबियाँ

इस्लाम की सही समझ

शख़्सी या व्यक्तिगत ख़ूबियों में सबसे पहली चीज़ इस्लाम की सही समझ है। जो आदमी इस्लामी जीवन-व्यवस्था को क़ायम करना चाहता हो, उसे पहले ख़ुद उस चीज़ को अच्छी तरह जानना और समझना चाहिए जिसे वह क़ायम करना चाहता है। इस मक़सद के लिए इस्लाम की सिर्फ़ मोटी-मोटी जानकारी काफ़ी नहीं है, बल्कि कम या ज़्यादा तफ़सीली इल्म होना चाहिए, और यह कमी-बेशी आदमी की सलाहियत पर निर्भर करती है। यह ज़रूरी नहीं है कि इस राह पर चलनेवाला हर राही और इस तहरीक का हर कारकुन (कार्यकर्ता) मुफ़्ती (फ़तवा देनेवाला) या मुज्तहिद (क़ुरआन-हदीस में ग़ौर करके नए मामलों को हल करनेवाला) हो, लेकिन यह हर हाल में ज़रूरी है कि उनमें से हर एक इस्लामी अक़ीदों को जाहिली ख़यालों और वहमों (अंधविश्वासों) से और इस्लामी तर्ज़े-अमल को जाहिलियत के तौर-तरीक़ों से अलग करके जान ले, और इस बात से वाक़िफ़ हो जाए कि ज़िन्दगी के अलग-अलग विभागों में इस्लाम ने इनसान को क्या रहनुमाई दी है। इस इल्म और जानकारी के बिना न आदमी ख़ुद सही राह पर चल सकता है, न दूसरों को रास्ता दिखा सकता है और न समाज के बनाव के लिए कोई काम सही नक़्शे पर कर सकता है, आम कारकुनों को यह जानकारी इस हद तक होनी चाहिए कि वे देहाती और शहरी अवाम को सीधे-साधे तरीक़ों से दीन समझा सकें, लेकिन बेहतरीन ज़ेहनी सलाहियतें रखनेवाले लोगों को इसमें इतनी ज़्यादा और गहरी जानकारी होनी चाहिए कि वे बुद्धिजीवी वर्ग को प्रभावित कर सकें, पढ़े-लिखे लोगों के सन्देहों और उलझनों को दूर कर सकें, मुख़ालिफ़त करनेवालों के एतिराज़ों का दलीलों के साथ इत्मीनानबख़्श (सन्तोषजनक) जवाब दे सकें, ज़िन्दगी की विभिन्न समस्याओं को इस्लाम की रौशनी में हल कर सकें। इस्लामी दृष्टिकोण से ज्ञान-विज्ञान और कला को नए सिरे से पेश कर सकें और इस्लाम की हमेशा

रहनेवाली बुनियादों पर एक नई तहज़ीब और नए तमद्दन (सभ्यता और संस्कृति) की इमारत उठा सकें : उनमें इतनी सलाहियत होनी चाहिए कि मौजूदा ज़माने के फ़िक्री ओर अमली (वैचारिक और व्यावहारिक) निज़ाम में से ख़राब हिस्सों से अच्छे हिस्सों को अलग कर सकें और साथ-साथ इतनी तामीरी सलाहियत भी होनी चाहिए कि जो कुछ तोड़ने के लायक़ है, उसे तोड़कर एक बेहतर चीज़ उसकी जगह बना सकें और जो कुछ रखने के लायक़ है उसे बाक़ी रखकर एक बेहतर निज़ाम (व्यवस्था) में उसको इस्तेमाल कर सकें।

इस्लाम पर पक्का ईमान

इस्लाम की गहरी जानकारी के बाद दूसरी ख़ूबी जो इस मक़सद के काम करनेवालों में होनी चाहिए वह यह है कि जिस दीन पर वे ज़िन्दगी के निज़ाम की तामीर करना चाहते हैं वे ख़ुद उसपर पक्का ईमान रखते हों, उनका अपना दिल उसके सही होने पर मुत्मइन हो और उनका अपना ज़ेहन इस मामले में पूरी तरह यकसू (एकाग्र) हो जाए। शक, उलझन और हिचकिचाहट लिए हुए कोई शख़्स इस काम को नहीं कर सकता। दिमाग़ी उलझनें और विचारों की ख़राबियाँ लेकर यह काम नहीं किया जा सकता। कोई ऐसा आदमी इस काम के लिए मुनासिब नहीं हो सकता जिसका दिल डाँवाडोल हो, जिसका ज़ेहन यकसू न हो और जिसे ख़याल और अमल की अलग-अलग राहें अपनी तरफ़ खींच रही हों या खींच सकती हों। यह काम तो जिसे भी करना हो उसे क़तई तौर पर इस बात का यक़ीन होना चाहिए कि ख़ुदा है और उन्हीं ख़ूबियों और सिफ़ात से भरपूर, उन्हीं अधिकारों का मालिक और उन्हीं हक़ों का हक़दार है, जो क़ुरआन में बयान हुए हैं। आख़िरत है और ठीक-ठीक वैसी ही है जैसी क़ुरआन में बताई गई है। सीधी राह सिर्फ़ एक है और वह वही है जो ख़ुदा के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने दिखाई है। हर वह चीज़ ग़लत है जो उसके ख़िलाफ़ हो, या उससे मेल न खाती हो। जो ख़याल भी किसी दूसरे ने पेश किया है और जो तरीक़ा भी दूसरे ने निकाला है उसको जाँचने की कसौटी सिर्फ़ एक है, और वह है अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत। इस कसौटी पर जो खरा

उतरे वह खरा है, और जो खोटा उतरे वह खोटा है। इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी की तामीर के लिए इन हक़ीक़तों पर पक्का यक़ीन चाहिए। दिल का पूरा इत्मीनान चाहिए। दिमाग़ की पूरी यकसूई (एकाग्रता) चाहिए। जो लोग इस मामले में थोड़ी-सी हिचकिचाहट भी रखते हों, या जिनकी दिलचस्पियाँ अभी दूसरी राहों से जुड़ी हों, उन्हें इस इमारत के बनाने की ज़िम्मेदारी लेने से पहले अपनी इस कमज़ोरी का इलाज करना चाहिए।

सीरत और किरदार

तीसरी ज़रूरी सिफ़त यह है कि आदमी का अमल उसके मुताबिक़ हो जो वह कह रहा है। जिस चीज़ को वह सही मानता है, उसकी पैरवी करे, जिसको ग़लत ठहराता है उससे बचे, जिसे अपना दीन कहता है उसे अपनी सीरत व किरदार (चरित्र-आचरण) का दीन बनाए और जिस चीज़ की तरफ़ वह दुनिया को बुलाता है सबसे पहले ख़ुद उसकी पैरवी करे। उसे अल्लाह के हुक्मों को पूरा करने और उसके मना किए हुए कामों से बचने के लिए किसी बाहरी दबाव या असर का मुहताज न होना चाहिए। किसी काम को दिली लगाव और शौक़ के साथ करने के लिए बस इतनी बात काफ़ी है कि उसके करने से अल्लाह ख़ुश होता है और सिर्फ़ यह बात कि एक काम अल्लाह के यहाँ नापसन्दीदा है इस हद तक असरदार होनी चाहिए कि वह उससे रुक जाए। उसकी यह कैफ़ियत सिर्फ़ आम हालात ही में न होनी चाहिए, बल्कि उसकी सीरत में इतनी ताक़त होनी चाहिए कि वह ग़ैर-मामूली बिगाड़ के माहौल में हर डर और हर लालच का मुक़ाबला करे और हर मुख़ालिफ़त का सामना करके भी सीधे रास्ते पर डटा रह सके। जो लोग ये सिफ़त न रखते हों, वे सुधार और बनाव में मददगार तो हो सकते हैं, मगर उसके अस्ल कारकुन (कार्यकर्ता) नहीं हो सकते। इस काम में मददगार तो हर वह शख़्स हो सकता है जो इस्लाम के लिए कोई अक़ीदत और मुहब्बत अपने अन्दर रखता है। बल्कि वह शख़्स भी एक हद तक मददगार ही है जो इस्लाम का इनकार और उसकी मुख़ालिफ़त नहीं करता या इसकी राह में रोड़े नहीं बनता, लेकिन ऐसे मददगार चाहे करोड़ों की तादाद में भी मौजूद हों तो अमली तौर से इस्लामी निज़ाम (इस्लामी-व्यवस्था) क़ायम नहीं हो

सकता और जाहिलियत के फलने-फूलने की रफ़्तार नहीं रुक सकती। अमली तौर से यह काम सिर्फ़ उसी वक़्त हो सकता है जबकि उसे करने के लिए ऐसे लोग उठें जो इल्म और यक़ीन की नेमत के साथ सीरत व किरदार की ताक़त भी रखते हों और जिनके ईमान व ज़मीर (अन्तरात्मा) में इतनी ज़िन्दगी मौजूद हो कि वे किसी बाहरी मुहर्रिक (उत्प्रेरक) के बिना ख़ुद अपने अन्दर की तहरीक (प्रेरणा) से दीन के तक़ाज़े पूरे करने लगें। इस तरह के कारकुन काम करने लग जाएँ तो उन बहुत-से हमदर्दों और मददगारों की मौजूदगी भी अपना फ़ायदा दे सकती है, जो मुस्लिम समाज ही में नहीं, ग़ैर-मुस्लिम समाज तक में हर जगह पाए जाते हैं।

दीन–मक़सद की हैसियत से

इन तीन सिफ़ात के साथ एक चौथी सिफ़त भी सुधार और बनाव के काम करनेवालों में पाई जानी चाहिए, और वह यह है कि अल्लाह का बोल बाला करना और दीने-इस्लाम को क़ायम करना उनके लिए सिर्फ़ एक ख़ाहिश और तमन्ना का दर्जा न रखता हो, बल्कि वे उसे अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाएँ। एक क़िस्म के लोग तो वे होते हैं जो दीन को जानते हैं, उसपर ईमान रखते हैं और उसके मुताबिक़ अमल भी करते हैं, मगर उसको क़ायम करने की कोशिश उनकी ज़िन्दगी का मक़सद और रात-दिन का मशग़ला नहीं होती, बल्कि वे नेकी और नेक अमल के साथ अपनी दुनिया के मामलों में लगे रहते हैं। ये बेशक नेक लोग हैं और अगर इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी अमली तौर से क़ायम हो जाए तो ये उसके अच्छे शहरी हो सकते हैं, लेकिन जहाँ जाहिलियत का निज़ाम पूरी तरह छाया हो और सामने यह काम हो कि उसे हटाकर इस्लाम का निज़ाम उसकी जगह क़ायम करना है, वहाँ सिर्फ़ इस दर्जे के नेक लोगों की मौजूदगी से कुछ नहीं बन सकता। वहाँ ज़रूरत उन लोगों की होती है जिनके लिए यह काम ठीक उनकी ज़िन्दगी का मक़सद हो, वे दुनिया के दूसरे काम तो जीने के लिए करें, मगर उनकी ज़िन्दगी सिर्फ़ इस एक मक़सद के लिए हो। इस मक़सद में वे मुख़लिस हों, इसी की लगन उनके दिल को लगी हुई हो। इसको पाने की कोशिश का वे पक्का इरादा रखते हों। इस काम में अपना वक़्त, अपना

माल, अपने जिस्म व जान की क़ुव्वतें और अपने दिल-दिमाग़ की सलाहियतें खपा देने के लिए वे तैयार हों, यहाँ तक कि अगर सिर-धड़ की बाज़ी लगा देने की ज़रूरत पेश आ जाए तो वे इससे भी मुँह न मोड़ें। जाहिलियत के जंगल को काटकर इस्लाम के लिए रास्ता साफ़ करना ऐसे ही लोगों का काम है।

ये ख़ूबियाँ – दीन की सही समझ, उसपर पक्का ईमान, उसके मुताबिक़ सीरत व किरदार और उसके क़ायम करने को ज़िन्दगी का मक़सद बनाना– वे बुनियादी ख़ूबियाँ हैं जो अलग-अलग रूप से उन तमाम लोगों में पाई जानी चाहिएँ जो इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी बनाने के लिए कुछ करना चाहते हों। उनकी अहमियत यह है कि अगर ये ख़ूबियाँ रखनेवाले लोग न मिलें तो इस काम के बारे में सिरे से सोचा ही नहीं जा सकता।

अब यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं है कि इस तरह के लोगों का, अगर वे सचमुच कुछ करना चाहते हों, मिलकर एक जमाअत के रूप में काम करना बहरहाल ज़रूरी है, इस बात से परे कि वे किस जमाअत में मिलें और किस नाम से काम करें। हर अक़्लमन्द आदमी इस बात को ख़ुद जानता है कि इज्तिमाई निज़ाम (व्यवस्था) में कोई बदलाव सिर्फ़ इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) कोशिशों से नहीं हो सकता। इसके लिए बिखरी हुई कोशिशें नहीं, बल्कि एकजुट कोशिशें चाहिए होती हैं। इसलिए इसे एक जानी-मानी हक़ीक़त मानते हुए अब हम उन ख़ूबियों को लेते हैं जो इस तरह की जमाअत में जमाअत की हैसियत से पाई जानी चाहिएँ।

इज्तिमाई ख़ूबियाँ

भाईचारा और मुहब्बत

ऐसी जमाअत की सबसे पहली ख़ूबी यह होनी चाहिए कि उसमें शरीक लोग आपस में मुहब्बत करनेवाले हों। एक-दूसरे के साथ ईसार (त्याग) का मामला करें। जिस तरह एक इमारत उसी वक़्त मज़बूती से क़ायम हो सकती है जब उसकी ईंटें आपस में मज़बूती के साथ जुड़ी हों, और ईंटों को जोड़नेवाली चीज़ सीमेंट है। इसी तरह एक जमाअत भी उस वक़्त सीसा पिलाई दीवार बनती है जबकि उसके अरकान (सदस्यों) के दिल एक-दूसरे से जुड़े हुए हों, और दिलों को जोड़नेवाली चीज़ ख़ुलूस भरी मुहब्बत है। आपस की ख़ैरख़ाही और हमदर्दी है और एक-दूसरे के साथ ईसार (त्याग) का सुलूक है। नफ़रत करनेवाले दिल कभी नहीं मिल सकते। छल-कपट भरा मेल-जोल कोई सच्ची एकता पैदा नहीं कर सकता। ख़ुदग़र्ज़ी (स्वार्थ) से भरी एकता छल-कपट की पहली अलामत होती है और सिर्फ़ एक रूखा-सूखा कारोबारी ताल्लुक़ किसी दोस्ती की बुनियाद नहीं हो सकता, कोई दुनियावी ग़रज़ ऐसे बेजोड़ चीज़ों को जमा भी कर दे तो वे सिर्फ़ बिखराव के लिए जमा होती हैं और कुछ बनाने के बजाय आपस ही में कट मरती हैं। एक मज़बूत जमाअत सिर्फ़ उसी वक़्त वुजूद में आती है जबकि अपने ख़यालात में मुख़लिस (निष्ठावान) और अपने मक़सद में मुहब्बत रखनेवाले लोग आपस में इकट्ठे हों और फिर यही ख़ुलूस और मक़सद से यही मुहब्बत उनके अन्दर आपस में भी ख़ुलूस और मुहब्बत पैदा कर दे। इस तरह की जमाअत हक़ीक़त में एक सीसा पिलाई हुई दीवार होती है, जिसके अन्दर बिगाड़ डालने के लिए शैतान कोई दरार नहीं पाता और बाहर से मुख़ालिफ़तों के सैलाब उठा-उठाकर लाता भी है तो उसे अपनी जगह से हिला नहीं सकता।

आपस में सलाह-मशवरा

दूसरी ज़रूरी ख़ूबी यह है कि इस जमाअत को आपसी मशवरे से काम

करना चाहिए और मशवरे के आदाब का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। ऐसे लोगों की जमाअत, जिसमें हर शख़्स अपनी मनमानी करे, हक़ीक़त में कोई जमाअत नहीं होती, बल्कि सिर्फ़ एक मण्डली होती है, जिससे कोई काम भी बन नहीं सकता और वह जमाअत भी ज़्यादा देर तक नहीं चल सकती, जिसमें कोई एक शख़्स या कुछ असरदार लोगों का एक टोला सर्वेसर्वा बन जाए, बाक़ी सब लोगों का काम उसके इशारों पर चलना हो। सही काम सिर्फ़ सलाह-मशवरे ही से हो सकता है क्योंकि इस तरह न सिर्फ़ यह कि बहुत-से दिमाग़ सोच-विचार और उसपर चर्चा करके हर मामले के अच्छे और बुरे पहलुओं का जाइज़ा लेकर एक बेहतर नतीजे पर पहुँच सकते हैं। बल्कि इससे दो फ़ायदे और भी होते हैं। एक यह कि जिस काम में पूरी जमाअत का मशवरा सीधे तौर पर या किसी वास्ते से शामिल हो उसे पूरी जमाअत दिल के इत्मीनान के साथ पूरा करने की कोशिश करती है और कोई भी यह नहीं सोचता कि हमपर एक चीज़ ऊपर से ठूँस दी गई है। दूसरे यह कि इस तरीक़े से पूरी जमाअत को मामले की समझ की तरबियत मिलती है। हर आदमी जमाअत और उसके मामलों से दिलचस्पी लेता है और उसके फ़ैसलों में अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करता है। लेकिन शर्त यह है कि सलाह-मशवरा करने के साथ उसके आदाब का भी ध्यान रखा जाए। सलाह-मशवरे के आदाब ये हैं कि हर शख़्स ईमानदारी के साथ अपनी राय पेश करे और कोई बात दिल में छिपाकर न रखे। बहस में ज़िद, हठधर्मी और किसी तरह का तास्सुब (पक्षपात) न आने पाए और जब बहुमत से एक फ़ैसला हो जाए तो इख़्तिलाफ़ रखनेवाले चाहे अपनी राय न बदलें, मगर जमाअती फ़ैसलों को पूरी ख़ुशदिली के साथ अमल में लाने की कोशिश करें। ये तीन बातें अगर न हों तो सलाह-मशवरे के तमाम फ़ायदे बेकार हो जाते हैं, बल्कि यही चीज़ आख़िरकार जमाअत में फूट डाल देती है।

अनुशासन (Discipline)

तीसरी अहम ख़ूबी है अनुशासन, ज़ाबिते और क़ायदे की पाबन्दी, आपसी सहयोग और टीम की तरह काम करना। एक जमाअत अपनी तमाम ख़ूबियों के बावजूद सिर्फ़ इस वजह से नाकाम हो जाती है कि वह अपने

फ़ैसलों और मंसूबों को अमल में नहीं ला सकती और यह नतीजा होता है अनुशासन की कमी और सहयोग के न होने का। बिगाड़ के काम सिर्फ़ हुल्लड़ से भी हो सकते हैं, मगर बनाव का कोई टिकाऊ काम सिर्फ़ उसी वक़्त हो सकता है जब सब लोग मिल-जुलकर कोशिश करें और मुनज़्ज़म (संगठित) कोशिश नाम है इस चीज़ का कि जो उसूल और क़ायदा बनाया गया हो, पूरी जमाअत उसकी पाबन्दी करे। जमाअत में जिसको जिस दर्जे में भी हुक्म देनेवाला बनाया गया हो, उसके हुक्मों पर अमल किया जाए। जमाअत का हर शख़्स अपने फ़र्ज़ को पहचानता हो और अपने ज़िम्मे का काम ठीक वक़्त पर लगन के साथ पूरा करने की कोशिश करे। जिन कारकुनों को जो काम मिलकर करना हो, वे एक-दूसरे को पूरा सहयोग दें। और जमाअत की मशीन इतनी चुस्त हो कि एक फ़ैसला होते ही उसको अमल में लाने के लिए तमाम पुर्ज़े हरकत में आ जाएँ। दुनिया में अगर वास्तव में कोई काम बना सकती हैं तो ऐसी ही जमाअतें बना सकती हैं। वरना उन जमाअतों का होना, न होना बराबर होता है जिन्होंने पूर्ज़े तो जुटा लिए हों मगर उनके जोड़ने और कसकर मशीन की तरह बाक़ायदा चलाने का कोई इन्तिज़ाम न किया हो।

सुधार के लिए तंक़ीद (आलोचना)

आख़िरी और बहुत अहम ख़ूबी यह है कि जमाअत में सुधार के मक़सद से तंक़ीद (आलोचना) की रूह भी मौजूद हो और उसका सलीक़ा भी पाया जाता हो। अंधानुकरण करनेवालों और सीधे-सादे अक़ीदतमन्दों का गरोह चाहे कैसी ही सही जगह से काम का आग़ाज़ करे, कैसे ही सही मक़सद को सामने रखकर चले, बहरहाल अख़िरकार बिगड़ता चला जाता है, क्योंकि इनसानी काम में कमज़ोरियों का ज़ाहिर होना फ़ितरी तौर पर ज़रूरी है, और जहाँ कमज़ोरियों पर निगाह रखनेवाला कोई न हो, या उनकी निशानदेही करना बुरा समझा जाता हो, वहाँ ग़फ़लत या मजबूरी की वजह से चुप्पी साधने के सबब हर कमज़ोरी सुकून व इत्मीनान के घोंसले में जगह पाती चली जाती है और अण्डे-बच्चे देने लगती है। जमाअत की सेहत और तन्दुरुस्ती के लिए तंक़ीद की रूह के न होने से बढ़कर कोई चीज़

नुक़सानदेह नहीं, और तंक़ीदी सोच को दबाने से बढ़कर जमाअत की और कोई बदख़्वाही नहीं हो सकती। यही तो वह चीज़ है जिसके ज़रिए से ख़राबियाँ ठीक वक़्त पर सामने आ जाती हैं और उनके सुधार की कोशिश की जा सकती है। लेकिन तंक़ीद के लिए ज़रूरी शर्त यह है कि वह ऐब और कमी निकालने के लिए न हो बल्कि ख़ुलूस के साथ सुधार की नीयत से हो, और इसके साथ दूसरी इतनी ही ज़रूरी शर्त यह है कि तंक़ीद करनेवालों को तंक़ीद का सलीक़ा आता हो। नेक नीयत से तंक़ीद करनेवाला भी बेढंगी, बे मौक़ा और भौंडी तंक़ीद से जमाअत को वही नुक़सान पहुँचा सकता है जो एक ख़राबियाँ और ऐब ढूँढनेवाले और बद-नीयत बिगाड़ फैलानेवाले के हाथों पहुँचना मुमकिन है।

तकमील तक पहुँचानेवाली ख़ूबियाँ

अब तक यह बताया जा चुका है कि समाज-सुधार और इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी बनाने का जो काम अब सामने है, उसके लिए कौन-सी ख़ूबियोंवाले लोग चाहिएँ और उन लोगों की इज्तिमाई तंज़ीम (जमाअत) में किन सिफ़ात का पाया जाना ज़रूरी है।

इस सिलसिले में अब तक जिन बातों का ज़िक्र किया गया है, उनकी हैसियत दरअस्ल सिर्फ़ इब्तिदाई और बुनियादी ख़ूबियों की है। जिस तरह एक कारोबार की शुरुआत करने के लिए कम-से-कम एक पूँजी चाहिए होती है, जिसके बिना उसे शुरू ही नहीं किया जा सकता, इसी तरह इस काम के लिए यह अख़लाक़ी पूँजी है जो काम के शुरू ही में मौजूद होनी चाहिए, वरना इसका हौसला करना ही बेकार है। ज़ाहिर है कि ऐसे लोगों के हाथों किसी इस्लामी निज़ाम के क़ायम होने का ख़याल भी नहीं किया जा सकता जो इस्लाम को जानते ही न हों, या उसके बारे में ख़ुद अपने अन्दर ही दिली इत्मीनान और ज़ेहनी यकसूई (एकाग्रता) न रखते हों, या उसको ख़ुद अपने अख़लाक़ व किरदार और अपनी अमली ज़िन्दगी का दीन न बना सकते हों, या इसके क़ायम करने की कोशिश को उन्होंने अपना मक़सद ही न ठहराया हो। इसी तरह यह भी ज़ाहिर है कि अगर मतलूबा सिफ़ात के लोग जमा हो जाएँ, मगर उनके दिल आपस में जुड़े हुए न हों, उनमें आपसी सहयोग और अनुशासन न हो, उनको मिलकर काम करने का ढंग न आता हो और वे आपसी मशवरे और तंक़ीद (आलोचना) के सही तरीक़ों से अनजान हों, तो सिर्फ़ उनका जमा हो जाना कोई फ़ायदेमन्द नतीजा नहीं निकाल सकता है। इसलिए यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि वे चार इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) और चार इज्तिमाई ख़ूबियाँ, जिनका ज़िक्र हमने अब तक किया है, अस्ल में इस काम की इब्तिदाई पूँजी हैं और उनकी जो कुछ भी अहमियत है इसी लिहाज़ से है। लेकिन यह समझना सही नहीं है कि इस काम के फलने-फूलने और इसकी कामयाबी के लिए बस यही अख़लाक़ी और रूहानी पूँजी काफ़ी है।

अब हमें यह देखना है कि वे और कौन-सी दूसरी ख़ूबियाँ हैं जो सुधार और बनाव के मक़सद में कामयाब होने के लिए ज़रूरी हैं।

अल्लाह से ताल्लुक़ और इख़लास (निष्ठा)

इनमें सबसे पहली ख़ूबी अल्लाह से ताल्लुक़ और अल्लाह के लिए मुख़लिस होना है। दुनिया के दूसरे सब काम तो ख़ुद या ख़ानदान या क़बीले या क़ौम और वतन की ख़ातिर किए जा सकते हैं, निजी फ़ायदों और माद्दी मक़सदों की सारी गन्दगियों के साथ किए जा सकते हैं, ख़ुदापरस्ती ही नहीं, ख़ुदा के इनकार तक के साथ किए जा सकते हैं, और उनमें हर तरह की दुनियावी कामयाबियाँ मुमकिन हैं। लेकिन इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी का क़ायम करना एक ऐसा काम है, जिसमें कोई कामयाबी उस वक़्त तक मुमकिन नहीं है जब तक आदमी का ताल्लुक़ अल्लाह के साथ सही, मज़बूत और गहरा न हो, और उसकी नीयत सिर्फ़-और-सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए काम करने की न हो। इसकी वजह यह है कि यहाँ जिस चीज़ को आदमी क़ायम करना चाहता है वह अल्लाह का दीन है और उसे क़ायम करने के लिए ज़रूरी है कि आदमी सब कुछ उस ख़ुदा के लिए करे जिसका यह दीन है। उसी की ख़ुशी इस काम का मक़सद होनी चाहिए, उसी की मुहब्बत इसके लिए एक अकेला मुहर्रिक (एक मात्र उत्प्रेरक) होनी चाहिए। उसी की मदद व हिमायत पर पूरा भरोसा होना चाहिए। उसी से इनाम की सारी उम्मीदें जुड़ी होनी चाहिएँ। उसी की हिदायतों और उसी के हुक्मों का पालन होना चाहिए और उसी की पकड़ का डर दिल पर छाया रहना चाहिए। उसके सिवा जिस डर, जिस लालच और जिस मुहब्बत और जिस पैरवी व फ़रमाँबरदारी की मिलावट भी होगी और जो दूसरी ग़रज़ भी इस काम में शामिल हो जाएगी वह सीधे रास्ते से क़दम हटा देगी और इसके नतीजे में और जो कुछ भी क़ायम हो जाए बहरहाल अल्लाह का दीन क़ायम न हो सकेगा।

आख़िरत की फ़िक्र

इसी से कुछ ज़्यादा क़रीबी ताल्लुक़ रखनेवाली दूसरी ख़ूबी आख़िरत की फ़िक्र है। मोमिन (ईमानवाले) के काम करने की जगह अगरचे दुनिया है और

जो कुछ उसे करना है यहीं करना है, मगर वह काम इस दुनिया के लिए नहीं करता बल्कि आख़िरत के लिए करता है और उसकी नज़र के सामने दुनियावी नतीजे नहीं बल्कि आख़िरत में मिलनेवाले नतीजे होते हैं। उसे हर लिहाज़ से वह काम करना चाहिए जो आख़िरत में फ़ायदेमन्द है और हर उस काम को छोड़ देना चाहिए जिसका वहाँ कोई हासिल नहीं निकलना है। उसे हर उस फ़ायदे को ठुकरा देना चाहिए जो आख़िरत में नुक़सान का सबब हो और हर उस नुक़सान को बरदाश्त कर लेना चाहिए जो आख़िरत में फ़ायदेमन्द हो। उसे फ़िक्र सिर्फ़ आख़िरत के अज़ाब व सवाब की होनी चाहिए, दुनिया के किसी अज़ाब व सवाब की कोई अहमियत उसकी निगाह में न होनी चाहिए। उसकी कोशिशें इस दुनिया में कोई फल लाएँ या न लाएँ, यहाँ उसे कामयाबी होती नज़र आए या नाकामी, यहाँ उसकी तारीफ़ हो या उसे बुरा कहा जाए, यहाँ वह इनाम पाए या आज़माइशों में डाला जाए, हर हाल में उसको इस यक़ीन के साथ काम करना चाहिए कि जिस ख़ुदा के लिए वह ये सारी मेहनतें कर रहा है उसकी निगाह से कुछ छिपा नहीं है, और उसके यहाँ आख़िरत के घर के हमेशा रहनेवाले इनाम से वह हरगिज़ महरूम न रहेगा, और वहीं की कामयाबी अस्ल कामयाबी है। इस ज़ेहनियत के बिना आदमी के लिए चन्द क़दम भी इस राह में सही रुख़ पर चलना मुमकिन नहीं है। दुनिया को मक़सद समझने का लगाव किसी मामूली से दर्जे में भी उसके साथ लगा रह जाए तो वह क़दम में लड़खड़ाहट पैदा किए बग़ैर नहीं रह सकता। अल्लाह के रास्ते में एक चोट तो नहीं दो-चार चोटें आख़िरकार उस शख़्स की हिम्मतें तोड़ देती हैं जो दुनियावी कामयाबियों को मक़सूद (अभीष्ट) बनाकर चलता है और उस राह की कोई कामयाबी किसी न किसी मरहले पर उस आदमी के रवैये में बिगाड़ पैदा कर देती है जिसके दिल को दुनियावी मक़सदों की कोई चाट लगी हुई हो।

अच्छी सीरत और किरदार

इन दो ख़ूबियों के असर (प्रभाव) को जो चीज़ अमली तौर पर एक ज़बरदस्त दिल जीत लेनेवाली क़ुव्वत में बदल देती है वह अच्छी सीरत और किरदार है। अल्लाह की राह में काम करनेवालों को बड़े दिल का और

हिम्मतवाला होना चाहिए। लोगों का हमदर्द और इनसानियत का ख़ैरख़ाह होना चाहिए और नर्म दिल और शरीफ़ तबीअत का होना चाहिए, ख़ुद्दार (आत्मसम्मानी) और क़नाअत-पसन्द (सन्तोषी) होना चाहिए। सुशील और विनम्र होना चाहिए। मीठी बोली बोलनेवाला और नर्म मिज़ाज होना चाहिए। वे ऐसे लोग होने चाहिएँ जिनसे किसी को बुराई का अंदेशा न हो और हर एक उनसे भलाई की उम्मीद रखे, जो अपने हक़ से कम पर राज़ी हों और दूसरों को उनके हक़ से ज़्यादा देने पर तैयार हों, जो बुराई का जवाब भलाई से दें या कम-से-कम बुराई से न दें। जो अपने ऐबों को तस्लीम करते हों और दूसरों की भलाइयों के क़द्रदान हों, जो इतना बड़ा दिल रखते हों कि लोगों की कमज़ोरियों को अनदेखा कर सकें, ग़लतियों को माफ़ कर सकें, ज़्यादतियों को नज़रअन्दाज़ कर सकें और अपने ख़ुद के लिए किसी से बदला न लें। जो दूसरों की ख़िदमत लेकर नहीं बल्कि ख़िदमत करके ख़ुश होते हों, अपने ग़रज़ के लिए नहीं बल्कि दूसरों की भलाई के लिए काम करें, हर तारीफ़ और हर मलामत (निन्दा) से बेपरवाह होकर वे अपना फ़र्ज़ पूरा करें और ख़ुदा के सिवा किसी के इनाम पर निगाह न रखें, जो ताक़त से दबाए न जा सकें, दौलत से ख़रीदे न जा सकें, मगर हक़ और सच्चाई के आगे बेझिझक सिर झुका दें, जिनके दुश्मन भी उनपर भरोसा रखते हों कि किसी हाल में उनसे शराफ़त और इनसाफ़ के ख़िलाफ़ कोई हरकत नहीं हो सकती। ये दिलों को मोह लेनेवाले अख़लाक़ हैं। इनकी काट तलवार की काट से बढ़कर और इनकी दौलत चाँदी-सोने की दौलत से ज़्यादा क़ीमती है। किसी शख़्स को ये अख़लाक़ मिले हों तो वह अपने आसपास की आबादी का मन मोह लेता है। अगर कोई जमाअत ये ख़ूबियाँ रखती हो, और फिर वह किसी बड़े मक़सद के लिए मिल-जुलकर कोशिश भी कर रही हो, तो देश के देश उसके आगे झुकते चले जाते हैं, यहाँ तक कि दुनिया की कोई ताक़त उसको हरा पाने में कामयाब नहीं हो सकती।

सब्र और जमाव

इसके साथ ही एक और ख़ूबी भी है जिसे कामयाबी की कुंजी कहना चाहिए, और वह है 'सब्र'। यह एक व्यापक शब्द है जिसके बहुत-से मतलब

हैं और अल्लाह की राह में काम करनेवालों को उनमें से हर मतलब के लिहाज़ से 'सब्रवाला' होना चाहिए।

सब्र का एक मतलब यह है कि आदमी जल्दबाज़ न हो, अपनी कोशिशों के नतीजे फ़ौरन और जल्दी देखने के लिए बेताब न हो और देर लगते देखकर हिम्मत न हार जाए। सब्रवाले आदमी की ख़ूबी यह है कि वह तमाम उम्र एक मक़सद के पीछे लगातार मेहनत किए चला जाता है, और लगातार नाकामियों के बावजूद अपने काम में लगा रहता है। लोगों की इस्लाह करने और उनकी ज़िन्दगी बनाने का काम ऐसा सब्र को आज़मानेवाला है कि इस ख़ूबी के बिना कोई शख़्स इसे नहीं कर सकता। यह बहरहाल हथेली पर सरसों जमाना नहीं है।

सब्र का दूसरा मतलब यह है कि आदमी तलव्वुन (रंग बदलने) और राय की कमज़ोरी और इरादे की क़मी की बीमारी में मुब्तला न हो। उसमें यह ख़ूबी मौजूद हो कि जिस राह को उसने सोच-समझकर अपनाया है उसपर डटा रहे और दिल के पक्के इरादे और हौसले की पूरी क़ुव्वत के साथ उसपर बढ़ता चला जाए।

सब्र का एक मतलब यह भी है कि आदमी मुश्किलों और मुसीबतों का बहादुरी से मुक़ाबला करे और अपने मक़सद की राह में जो तकलीफ़ भी पेश आए उसे ठण्डे दिल के साथ बर्दाश्त कर ले। सब्रवाला आदमी किसी तूफ़ान और किसी सैलाब के थपेड़ों से हारकर मुँह नहीं मोड़ता।

सब्र के मानी में यह बात भी शामिल है कि आदमी जल्द दुखी हो जानेवाला और ग़ुस्से से भड़क उठनेवाला न हो, बल्कि बर्दाश्त करनेवाला और उदार हो, जिस शख़्स को सुधार और बनाव का काम करना हो और ख़ास तौर से जब यह ख़िदमत उसे मुद्दतों की बिगड़ी हुई सोसायटी में करनी हो, उसे ज़रूर ही बड़ी गन्दी, घिनौनी और घटिया क़िस्म की मुख़ालिफ़तों का सामना करना पड़ता है। अगर वह इतनी ताक़त नहीं रखता कि गालियाँ खाकर हँस दे, ताने सुनकर टाल दे, इलज़ाम और बोहतान और झूठे प्रोपगण्डे को बिलकुल नज़र-अन्दाज़ करके पूरे सुकून और दिली-लगन के साथ अपना काम करता रहे तो बेहतर यही है कि वह इस राह में क़दम

ही न रखे। इसलिए कि यह काँटों भरी राह है, इस राह का हर काँटा यह इरादा किए बैठा है कि आदमी जिस तरफ़ भी चाहे उस तरफ़ चला जाए, मगर इस दिशा में उसे एक इंच भी न बढ़ने दिया जाएगा। इस हालत में जो शख़्स हर काँटे से उलझने लगे, वह क्या आगे बढ़ेगा। यहाँ तो ऐसे लोगों की ज़रूरत है जिनके दामन से अगर कोई काँटा उलझ जाए तो वह दामन का वह हिस्सा फ़ाड़कर उसके हवाले कर दें और एक पल के लिए भी अपनी राह खोटी न करें। यह सब्र सिर्फ़ मुख़ालिफ़त करनेवालों ही के मुक़ाबले में नहीं चाहिए, बल्कि कई बार इस राह के राही को ख़ुद अपने साथियों की तरफ़ से भी तल्ख़ और नागवार बातें सुननी पड़ती हैं और उनके मामले में अगर वह नर्मी और बर्दाश्त से काम न ले तो पूरे क़ाफ़िले को तबाह कर सकता है।

सब्र इस चीज़ का नाम भी है कि आदमी हर डर और लालच के मुक़ाबले में सीधे रास्ते पर जमा रहे। शैतान की सारी उकताहटों और मन की तमाम ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ अपना फ़र्ज़ पूरा करे। हराम से बचे और अल्लाह की क़ायम की हुई हदों पर क़ायम रहे। गुनाह के सारे मज़ों और फ़ायदों को ठुकरा दे और नेकी और सच्चाई के हर नुक़सान और उसकी बदौलत हासिल होनेवाली हर महरूमी (अभाव) को बर्दाश्त कर जाए। अपनी आँखों से दुनियापरस्तों की ज़िन्दगी की चमक-दमक देखे और उसपर रीझना तो एक तरफ़ दिल में हल्की सी हसरत (लालसा) को भी जगह न दे। अपने सामने दुनिया के मोह की राहें खुली और कामयाबियों के मौक़े मौजूद पाए और दिल के पूरे इत्मीनान के साथ उस जीवन-सामग्री पर राज़ी रहे जो अपने मक़सद की ख़िदमत करते हुए वह अपने रब की मेहरबानी से हासिल कर रहा हो।

सब्र उन तमाम मानी में कामयाबी की कुंजी है, जिस पहलू से भी हमारे काम में बेसब्री शामिल होगी, उसका बुरा नतीजा ज़ाहिर होकर रहेगा।

हिकमत और गहरी सूझ-बूझ

इन सब ख़ूबियों के साथ एक बहुत ही अहम ख़ूबी हिकमत यानी

सूझ-बूझ है, जिसपर बड़ी हद तक कामयाबी का दारोमदार है। दुनिया में ज़िन्दगी के जो निज़ाम भी क़ायम हैं उनको आला दर्जे के अक़्लमन्द और होशियार लोग चला रहे हैं और उनके पीछे माद्दी वसाइल (भौतिक संसाधनों) के साथ अक़्ली और फ़िक्री (वैचारिक) ताक़तें और इल्मी व फ़न्नी (ज्ञान-विज्ञान एवं कला सम्बन्धी) क़ुव्वतें काम कर रही हैं। उनके मुक़ाबले में एक दूसरे निज़ाम को क़ायम कर देना और कामयाबी के साथ चला लेना कोई बच्चों का खेल नहीं है। यह उन भोले-भाले **लोगों का** काम नहीं है जो एक कोने में बैठे अल्लाहु-अल्लाहु करते रहते हैं। ये भोले-भाले लोग चाहे कितने ही अच्छे और नेक नीयत हों, इस काम को नहीं कर सकते। इसके लिए गहरी सूझ-बूझ और तदब्बुर (चिंतन-शक्ति) की ज़रूरत है। इसके लिए समझदारी और मामले की समझ चाहिए। इस काम को वही लोग कर सकते हैं जो मौक़े को पहचाननेवाले और तदबीर करनेवाले हों और ज़िन्दगी के मसाइल को समझने और उन्हें हल करने की सलाहियत रखते हों।

'हिकमत' इन सब ख़ूबियों के लिए एक ऐसा लफ़्ज़ है जिसमें ये सारे मतलब आ जाते हैं और समझदारी और सूझ-बूझ के कई काम हिकमत के तहत आते हैं।

यह हिकमत है कि आदमी इनसानों की नफ़सियात (मनोविज्ञान) की समझ रखता हो और इनसानों से मामलात करना जानता हो। लोगों के ज़ेहनों को अपनी दावत से प्रभावित करने और उनको अपने मक़सद के लिए इस्तेमाल करने के तरीक़ों से वाक़िफ़ हो। हर शख़्स को एक ही लगी-बँधी दवा देता न चला जाए बल्कि हर एक के मिज़ाज और मर्ज़ की सही जाँच करके इलाज करे। सबको एक लकड़ी से न हाँके, बल्कि जिन-जिन शख़्सों, वर्गों और गरोहों से उसका सामना हो उनके ख़ास हालात को समझकर उनके साथ मामला करे।

यह भी हिकमत है कि आदमी अपने काम को और उसके करने के तरीक़ों को जानता हो और उसके रास्ते में पेश आनेवाली मुश्किलों, मुख़ालिफ़तों और रुकावटों से निबटना भी उसको आता हो। उसे ठीक-ठीक मालूम होना चाहिए कि जिस मक़सद के लिए वह कोशिश करने उठा है

उसके लिए उसे क्या कुछ करना है, किस-किस तरह की रुकावटों को दूर करना है।

यह भी हिकमत ही है कि आदमी वक़्त के हालात पर नज़र रखता हो, मौक़ों को समझता हो और यह जानता हो कि किस मौक़े पर क्या तदबीर की जानी चाहिए। हालात को समझे बिना अंधा-धुंध क़दम उठा देना, बे-मौक़ा काम करना और मौक़े पर चूक जाना नादान और लापरवाह लोगों का काम है और ऐसे लोग चाहे कितने ही पाक मक़सद के लिए कितनी ही नेकी और नेकनियती के साथ काम कर रहे हों, कभी कामयाब नहीं हो सकते।

और इन सब हिकमतों से बढ़कर हिकमत का सबसे बड़ा दर्जा यह है कि आदमी दीन की गहरी समझ और दुनिया के मामलों की सूझ-बूझ रखता हो। महज़ शरीअत के हुक्मों और मरहलों से वाक़िफ़ होना और उन्हें पेश आनेवाले मामलों पर चस्पाँ कर देना किसी मुफ़्ती के मंसब के लिए तो काफ़ी हो सकता है, मगर बिगड़े हुए समाज को ठीक करने और ज़िन्दगी के निज़ाम को जाहिलियत की बुनियादों से उखाड़कर नए सिरे से क़ायम करने के लिए काफ़ी नहीं हो सकता। इस मक़सद के लिए तो ज़रूरी है कि आदमी शरई हुक्मों की छोटी-छोटी बातों के साथ उनके तमाम पहलुओं पर, बल्कि दीन के पूरे निज़ाम (व्यवस्था) पर नज़र रखता हो। फिर हुक्मों के साथ उनकी हिकमत का भी उसे इल्म हो और उन हालात और समस्याओं को भी वह समझता हो जिनमें हुक्मों को लागू करने की ज़रूरत हो।

एक ग़लत फ़हमी

मतलूबा सिफ़ात की इस फ़ेहरिस्त को देखकर पहली नज़र में एक आदमी घबरा जाता है और यह सोचने लगता है कि यह काम तो फिर उन लोगों के करने का है जो दीन के लिहाज़ से आला दर्जे के लोग हैं। आम इनसान कहाँ से इतनी ख़ूबियाँ लेकर आ सकते हैं। इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए यह समझ लेना ज़रूरी है कि हर ख़ूबी और सिफ़त का हर शख़्स में इन्तिहाई दर्जे तक पाया जाना ज़रूरी नहीं है और न यही ज़रूरी

है कि वह किसी में पहले ही क़दम पर अपनी पूरी तरबियत-याफ़्ता (प्रशिक्षित) शक्ल में मौजूद हो। हमारा मक़सद इन बातों के बयान करने से सिर्फ़ यह बात ज़ेहन में बिठाना है कि जो लोग इस काम को करने के लिए उठें वे महज़ "समाज-सेवा का एक काम" समझकर यूँ ही न खड़े हो जाएँ, बल्कि अपने दिल का जाइज़ा लेकर यह मालूम करने की कोशिश करें कि इस काम के लिए जो ख़ूबियाँ चाहिएँ हैं उनका माद्दा (तत्व) उनके अन्दर मौजूद है या नहीं। बस माद्दा अगर मौजूद है तो काम शुरू करने के लिए काफ़ी है। उसको परवरिश करना और अपनी सलाहियत के मुताबिक़ ज़्यादा-से-ज़्यादा मुमकिन हद तक बढ़ाना बाद के मरहलों से ताल्लुक़ रखता है। जिस तरह एक ज़रा-सा बीज ज़मीन में जड़ पकड़ने के बाद आहिस्ता-आहिस्ता खाद-पानी पाकर एक बड़ा-सा पेड़ बन जाता है। लेकिन बीज ही मौजूद न हो तो कुछ भी नहीं बन सकता। इसी तरह ज़रूरी ख़ूबियों का माद्दा आदमी में मौजूद हो तो मुनासिब कोशिश से वह थोड़ा-थोड़ा करके अपनी इन्तिहा तक पहुँच सकता है। मगर सिरे से माद्दा ही मौजूद न हो तो किसी कोशिश और तरबियत से उसका पैदा हो जाना मुमकिन नहीं है।

जो कुछ अब तक कहा जा चुका है उसका निचोड़ यह है कि सुधार और बनाव के काम के लिए एक सही प्रोग्राम जितना ज़रूरी है उससे बहुत ज़्यादा ज़रूरी ऐसे कारकुनों का होना है जो इस काम के लिए मुनासिब अख़लाक़ी ख़ूबियाँ रखते हों, क्योंकि आख़िरकार जिस चीज़ को समाज से निबटना और दीन के क़ायम करने की राह में आनेवाली आज़माइशों का सामना करना है वे किसी प्रोग्राम की धाराएँ (Points) नहीं बल्कि उन लोगों की इज्तिमाई व इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) सीरत (आचरण) है जो अमल के मैदान में काम करने के लिए आगे बढ़ें। इसलिए हमें किसी प्रोग्राम को तय करने से पहले यह देखना चाहिए कि इस काम के लिए कैसे कारकुन चाहिएँ। उनमें कौन-सी ख़ूबियाँ पाई जानी चाहिएँ और किन बुराइयों से उन्हें पाक होना चाहिए और ऐसे कारकुनों की तैयारी के साधन क्या हैं। इस हक़ीक़त को बयान करने के बाद हमने ज़रूरी ख़ूबियों को तीन हिस्सों में बयान किया है।

सबसे पहले वे ख़ूबियाँ, जो काम की बुनियाद की हैसियत से इस काम

में हिस्सा लेनेवाले हर शख़्स के अन्दर मौजूद होनी चाहिएँ, वे ये हैं : (1) दीन की सही समझ (2) उसपर पक्का ईमान (3) उसके मुताबिक़ सीरत व किरदार, और (4) उसे क़ायम करने को ज़िन्दगी का मक़सद बनाना।

दूसरे नम्बर पर वे ख़ूबियाँ हैं, जो इस काम के लिए उठनेवाली जमाअत में पाई जानी चाहिएँ, वे ये हैं : (1) आपसी मुहब्बत, अच्छा गुमान, ख़ुलूस, हमदर्दी व ख़ैरख़ाही और एक-दूसरे के लिए ईसार (त्याग) का जज़बा (2) आपस के मशवरे से काम करना और मशवरा करने के इस्लामी आदाब (शिष्टाचार) का ध्यान रखना (3) नज़्म-ज़ब्त (अनुशासन) बाज़ब्तगी और बाक़ायदगी, सहयोग और टीम स्प्रिट, (4) इस्लाह व सुधार की ग़रज़ से तंक़ीद (आलोचना) जो सलीक़े और सही ढंग से हो और जिससे जमाअत के अन्दर पैदा होनेवाली कमियों को बर वक़्त दूर किया जा सके, न कि ख़राबियों में उलटे बढ़ोत्तरी हो।

तीसरे वे ख़ूबियाँ जो दीन क़ायम करने की जिद्दो-जुहद को सही डगर पर चलाने और कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाने के लिए ज़रूरी हैं। यानी (1) अल्लाह के साथ गहरा ताल्लुक़ और उसी की ख़ुशनूदी के लिए काम करना (2) आख़िरत की पूछ-गच्छ को याद रखना और आख़िरत में मिलनेवाले इनाम के सिवा किसी दूसरी चीज़ पर निगाह न रखना (3) अच्छा अख़लाक़ (4) सब्र और (5) हिकमत।

अब हमें यह दिखाना है कि वे बड़ी-बड़ी बुराइयाँ क्या हैं जिनसे इस बड़े मक़सद के लिए काम करनेवालों को पाक होना चाहिए।

बुनियादी ख़राबियाँ

घमण्ड

सबसे पहली और सबसे बुरी ख़राबी, जो हर भलाई की जड़ काट देती है, ख़ुद को दूसरों से बड़ा समझना और उसपर गर्व करना, ख़ुद ही को सब कुछ और दूसरों से ऊँचा समझना है। यह एक सरासर शैतानी जज़बा है जो शैतानी कामों के लिए ही मुनासिब हो सकता है। भलाई का कोई काम इसके साथ नहीं किया जा सकता। इसलिए कि बड़ाई सिर्फ़ अल्लाह तआला के लिए है। बन्दों में बड़ाई का घमण्ड एक झूठ के सिवा कुछ भी नहीं। जो शख़्स या गरोह इस झूठे दंभ में पड़ा हो वह अल्लाह तआला की हर मदद से महरूम (वंचित) हो जाता है क्योंकि अल्लाह को सबसे बढ़कर यही चीज़ अपने पैदा किए हुए लोगों में नापसन्द है। इसका नतीजा यह होता है कि इस मर्ज़ के मरीज़ को कभी सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत नहीं मिलती। वह एक के बाद एक जहालतें और बेवक़ूफ़ियाँ करता रहता है। यहाँ तक कि आख़िरकार नाकामी का मुँह देखता है। इसका नतीजा यह भी होता है कि लोगों के साथ बर्ताव में उसका घमण्ड जितना-जितना ज़ाहिर होता जाता है, उतनी ही उसके ख़िलाफ़ नफ़रत पैदा होती चली जाती है। यहाँ तक कि वह लोगों की नफ़रत का शिकार होकर वह इस क़ाबिल ही नहीं रहता कि उसका कोई अख़लाक़ी असर लोगों में क़ायम हो सके।

भलाई के लिए काम करनेवालों में यह बीमारी कई रास्तों से आती है। ओछें लोगों में यह इस रास्ते से आती है कि जब उनकी दीनी व अख़लाक़ी हालत आसपास के समाज के मुक़ाबले में किसी हद तक बेहतर हो जाती है और कुछ थोड़ा बहुत काम भी वे कर लेते हैं, जिनका एतिराफ़ दूसरों की ज़बानों से होने लगता है, तो शैतान उनके दिलों में यह भ्रम डालना शुरू कर देता है कि अब तुम सचमुच बड़ी चीज़ हो गए हो और शैतान ही की उकसाहट से वे अपनी बड़ाई अपनी ज़बान और तर्ज़े-अमल से जताने पर उतर आते हैं। इस तरह वह काम जो नेकी के जज़्बे से शुरू हुआ था,

धीरे-धीरे एक बहुत ग़लत राह पर चल पड़ता है। दूसरा रास्ता इसके आने का यह है कि जो लोग नेक-नीयती के साथ एक तरफ़ अपनी और दूसरी तरफ़ अल्लाह के बन्दों के सुधार के लिए कोशिश करते हैं उनके अन्दर ज़रूर ही कुछ भलाइयाँ पैदा हो जाती हैं। वे किसी-न-किसी हद तक अपने समाज की आम हालत से अलग और बेहतर होते हैं। कुछ-न-कुछ उनके काम क़द्र के क़ाबिल होते हैं, और ये ऐसी चीज़ें हैं जो बहरहाल महसूस हुए बिना नहीं रहतीं। हक़ीक़त का यह एहसास अपने आपमें फ़ितरी और ज़रूरी है, मगर नफ़्स (मन) की एक ज़रा-सी ढील और शैतान की एक ज़रा-सी उकसाहट उसे घमण्ड और ख़ुदपसन्दी में बदल देती है। फिर कई बार ऐसे हालात भी पेश आते हैं कि जब उनके विरोधी उनके काम और काम से गुज़रकर उनकी शख़्सियत में ख़राबियाँ निकालने की कोशिश करते हैं तो उन्हें मजबूरन अपने बचाव में कुछ बातें कहनी पड़ती हैं, जो चाहे सच हों मगर अपनी ख़ूबियों के इज़हार से ख़ाली नहीं होतीं। इस चीज़ को एक ज़रा-सा असन्तुलन जाइज़ हद से बढ़ाकर घमण्ड के दायरे में पहुँचा देता है। यह एक ख़तरनाक चीज़ है।

बन्दगी का एहसास

इससे हर शख़्स और जमाअत को ख़बरदार रहना चाहिए जो ख़ुलूस के साथ सुधार का मक़सद लेकर उठे। बल्कि ऐसे हर शख़्स में अलग-अलग और ऐसी हर जमाअत में इकट्ठे तौर पर बन्दगी का एहसास न सिर्फ़ मौजूद रहे बल्कि ज़िन्दा और ताज़ा रहना चाहिए। उसे कभी यह सच्चाई नहीं भूलनी चाहिए कि बड़ाई सिर्फ़ अल्लाह की हस्ती के लिए ख़ास है। बन्दे का मक़ाम उसके सामने झुककर रहने के सिवा और कुछ नहीं। किसी बन्दे में अगर सचमुच कोई भलाई पैदा हो तो यह अल्लाह की मेहरबानी है। फ़ख़्र (गर्व) का नहीं, शुक्र का मक़ाम है। इसपर अल्लाह के सामने और ज़्यादा विनम्रता दिखानी चाहिए और इस थोड़ी-सी पूँजी को भलाई के काम में लगा देना चाहिए ताकि अल्लाह और ज़्यादा अपनी मेहरबानी से अता करे और यह पूँजी तरक़्क़ी करे। भलाई पाकर अपने घमण्ड में पड़ना तो दरअस्ल उसे बुराई से बदल लेना है, और यह तरक़्क़ी का नहीं बल्कि गिरावट और पस्ती का रास्ता है।

अपना जाइज़ा लेना

बन्दगी के एहसास के बाद दूसरी चीज़, जो इनसान को घमण्ड में पड़ने से बचा सकती है वह, अपना जाइज़ा लेना है। जो शख़्स अपना ठीक-ठीक हिसाब लगाए और अपनी ख़ूबियों को महसूस करने के साथ-साथ यह भी देखे कि वह किन-किन कमज़ोरियों और कमियों में मुब्तला है, वह कभी ख़ुदपसन्दी व ख़ुदपरस्ती के रोग का शिकार नहीं हो सकता। अपने गुनाहों और ग़लतियों पर किसी की निगाह हो तो तौबा करने से इतनी फ़ुर्सत ही न मिलेगी कि घमण्ड की हवा उसके सिर में समा सके।

अच्छे लोगों पर नज़र

इस ग़लत रुझान को रोकनेवाली एक और चीज़ यह है कि आदमी सिर्फ़ उन पस्तियों और ख़राब लोगों की तरफ़ न देखे जिनसे वह अपने आपको बुलन्द और बेहतर पाता है, बल्कि दीन व अख़लाक़ की उन बुलन्दियों को भी देखे, जिनके मुक़ाबले में वह अभी बहुत नीचे है। अख़लाक़ व रूहानियत की पस्तियाँ भी अथाह हैं और बुलन्दियाँ भी। बुरे-से-बुरा आदमी भी नीचे की तरफ़ देखे तो किसी को अपने से भी बुरा पाकर अपने बड़े होने पर फ़ख़्र (गर्व) कर सकता है, मगर इस फ़ख़्र का नतीजा इसके सिवा कुछ नहीं होता कि वह अपनी मौजूदा हालत पर मुत्मइन होकर बेहतर बनने की कोशिश छोड़ देता है, बल्कि इससे भी गुज़रकर मन के अन्दर बैठा हुआ शैतान उसे यह इत्मीनान भी दिलाता है कि कुछ और ज़्यादा नीचे उतर जाने की भी अभी गुंज़ाइश है। सोचने का यह नज़रिया सिर्फ़ वही लोग अपना सकते हैं जो अपनी तरक़्क़ी के दुश्मन हों। तरक़्क़ी की सच्ची तलब रखनेवाले हमेशा नीचे देखने की जगह ऊपर देखते हैं। हर बुलन्दी पर पहुँचकर कुछ और बुलन्दियाँ उनके सामने आती हैं, जिन्हें देखकर फ़ख़्र की जगह अपने नीचे होने का एहसास उनके दिल में कसक पैदा करता है, और यही कसक उन्हें और ज़्यादा ऊपर चढ़ने पर उभारती है।

इन सब चीज़ों के साथ यह भी ज़रूरी है कि जमाअत हर वक़्त इस मामले में चौकन्नी रहे और अपने दायरे में बड़ाई का एहसास और घमण्ड

जहाँ कहीं भी ज़ाहिर हो, उसका नोटिस लेकर उसी वक़्त उसकी रोकथाम करे। मगर घमण्ड दूर करने की यह कोशिश कभी ऐसे तरीक़ों से न होनी चाहिए कि लोगों में बनावटी और दिखावटी विनम्रता और ख़ुशमिज़ाजी की बीमारी पैदा हो जाए। घमण्ड का इससे ज़्यादा बुरा कोई रूप नहीं जिसपर बनावटीपन के साथ विनम्रता का परदा डाला गया हो।

दिखावा

दूसरी बड़ी ख़राबी, जो भलाई की जड़ों को खा जाने में घमण्ड से किसी तरह भी कम नहीं, यह है कि कोई शख़्स और गरोह भलाई का काम दिखावे के लिए करे और इस काम में उसे लोगों से अपनी तारीफ़ सुनने की फ़िक्र या उसकी परवाह हो। यह चीज़ सिर्फ़ ख़ुलूस ही के नहीं हक़ीक़त में ईमान के भी उलट है, और इसी बुनियाद पर इसे छिपा हुआ शिर्क कहा गया है। ख़ुदा और आख़िरत पर ईमान का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि इनसान सिर्फ़ अल्लाह को राज़ी करने के लिए काम करे। उसी से बदले और इनाम की उम्मीद लगाए और दुनिया के बजाय आख़िरत के नतीजों पर निगाह रखे। लेकिन दिखावे करनेवाला इनसान लोगों की ख़ुशनूदी को अपना मक़सद बनाता है। लोगों ही से हर काम का इनाम चाहता है और दुनिया ही में अपना इनाम, नामवरी, शोहरत और लोकप्रियता, पहुँच और असर और शानो-शौकत और रुतबे और मंसब की शक्ल में पा लेना चाहता है। इसका मतलब यह है कि उसने अल्लाह के बन्दों को अल्लाह का शरीक बनाया या उसके बराबर ठहराया है। ज़ाहिर है कि इस सूरत में आदमी ख़ुदा के दीन की चाहे कितनी और कैसी ही ख़िदमत करे, बहरहाल वह न ख़ुदा के लिए होगी, न उसके दीन की ख़ातिर होगी और न उसकी गिनती अल्लाह के यहाँ नेकियों में की जाएगी।

सिर्फ़ यही नहीं कि यह नापाक जज़बा नतीजे के एतिबार से अमल को बरबाद कर देता है, बल्कि हक़ीक़त में इसके साथ कोई सही काम करना मुमकिन ही नहीं है। इस जज़्बे की फ़ितरी ख़ासियत यह है कि आदमी को काम से ज़्यादा काम के इश्तिहार की फ़िक्र होती है और इसी को वह काम समझता है, जिसका ढिंढोरा दुनिया में पिटे और तारीफ़ का टैक्स वुसूल करके

लाए। ख़ामोश काम, जिसका ख़ुदा के सिवा किसी को पता न हो, उसके नज़दीक कोई काम नहीं होता। इस तरह आदमी के अमल का दायरा सिर्फ़ चर्चा में आनेवाले कामों तक सिमट जाता है और चर्चा का मक़सद हासिल हो जाने के बाद ख़ुद उन कामों के साथ भी उसे कोई दिलचस्पी बाक़ी नहीं रहती। काम के शुरू में चाहे कितने ही ख़ुलूस (निष्ठा) के साथ अमली ज़िन्दगी की शुरुआत की गई हो, यह बीमारी लगते ही ख़ुलूस इस तरह ग़ायब होना शुरू हो जाता है, जैसे टी॰ बी॰ की बीमारी आदमी की ज़िन्दगी की ताक़त को खाती चली जाती है। फिर उसके लिए यह मुमकिन नहीं रहता कि लोगों की नज़रों से हटकर भी नेक रहे और अपना फ़र्ज़ समझकर भी कोई फ़र्ज़ अदा करे। वह हर चीज़ को उसकी नुमाइशी क़द्र और लोगों से मिलनेवाली तारीफ़ की क़ीमत के लिहाज़ से जाँचता है। हर मामले में सिर्फ़ यह देखता है कि दुनिया किस डगर को पसन्द करती है और किसी ऐसे काम के बारे में सोचना भी उसके लिए नामुमकिन होता है, जो दुनिया में उसे अलोकप्रिय बना दे। चाहे ईमानदारी के साथ उसके दिल की आवाज़ यही हो कि वह है करने का काम।

सबसे कटकर कोनों में बैठकर अल्लाह-अल्लाह करनेवालों के लिए इस फ़ितने से बचना दूसरों के मुक़ाबले में बहुत आसान है। मगर जो लोग पब्लिक में आकर सुधार, ख़िदमत और बनाव के काम करते हैं, वे हर वक़्त इस ख़तरे में घिरे रहते हैं कि न जाने कब इस अख़लाक़ी बीमारी के कीटाणु उनके अन्दर घुस जाएँ। उन्हें बहरहाल बहुत-से वे काम करने होते हैं जो दुनिया के सामने आते हैं, उन्हें आम लोगों को अपना हमख़याल बनाने और उनके अन्दर पैठ बनाने की कोशिश करनी होती है। उनके काम की बहुत-सी ज़रूरतें इस बात पर भी उन्हें मजबूर करती हैं कि वे अपने कामों की रूदादें (रिपोर्टें) छापें। उनकी कुछ-न-कुछ ख़िदमतें ऐसी भी होती हैं जिनसे लोगों का ध्यान उनकी तरफ़ होता है और ज़बानों से उनके लिए तारीफ़ के शब्द निकलवाता है। उन्हें मुख़ालिफ़तों का सामना भी करना पड़ता है और अपने बचाव में न चाहते हुए भी उन्हें मजबूरन अपने अच्छे पहलुओं को नुमायाँ करना पड़ता है। इन हालात में यह कोई आसान काम

नहीं है कि शोहरत हो मगर शोहरत की चाट न लगे। दिखावा हो मगर दिखावे के लिए काम करने की बीमारी न लगे। लोकप्रियता हो मगर वह मक़सद न बनने पाए, लोगों की तरीफ़ें मिलें मगर उसे पाने की फ़िक्र या उसकी परवाह न हो, दिखावे की पैदाइश की वजहें और असबाब चारों तरफ़ से घेरे हुए हों मगर दिखावे से दामन बचा रहे। इसके लिए बड़ी कोशिश, बड़ी तवज्जोह और बड़ी मेहनत की ज़रूरत है। एक ज़रा-सा ढीलापन और लापरवाही भी इस मामले में दिखावे के कीटाणुओं को घुस आने का रास्ता दे सकती है।

हर शख़्स की अपने तौर पर कोशिश

इससे बचने के लिए हर शख़्स को अलग से अपने तौर पर कोशिश करनी चाहिए और इज्तिमाई कोशिश भी होनी चाहिए। अलग-अलग शख़्स के ज़रिए की जानेवाली कोशिश का तरीक़ा यह है कि हर शख़्स कुछ-न-कुछ ऐसे नेक कामों को अपने ऊपर लाज़िम कर ले जो ज़्यादा-से-ज़्यादा छिपकर किए जाएँ। और हमेशा अपने मन का जाइज़ा लेकर देखता रहे कि उसे ज़्यादा दिलचस्पी उन छिपकर की जानेवाली नेकियों में महसूस होती है या उन नेकियों में जो सबके सामने ज़ाहिर होनेवाली हों। अगर दूसरी सूरत हो तो आदमी को फ़ौरन ख़बरदार हो जाना चाहिए कि दिखावे का जज़्बा उसके अन्दर जड़ पकड़ रहा है और अल्लाह से पनाह माँगते हुए इरादे की पूरी क़ुव्वत के साथ मन की इस हालत को बदलने की कोशिश करनी चाहिए।

इज्तिमाई कोशिश

मिल-जुलकर की जानेवाली कोशिश की शक्ल यह है कि जमाअत अपने दायरे में दिखावे के रुझानों को कभी पनपने न दे। अपने कामों में इज़हार और एलान करने को बस हक़ीक़ी ज़रूरत तक महदूद रखे। नुमाइश के शौक़ का हल्का-सा असर भी जहाँ महसूस हो फ़ौरन उसे दूर करने की कोशिश करे। जमाअती मशवरों और बातचीत में यह बात कभी इशारे की ज़बान में भी बर्दाश्त न की जाए कि फ़ुलाँ काम इसलिए करना चाहिए कि लोग उसे पसन्द करेंगे और फ़ुलाँ काम इसलिए नहीं करना चाहिए कि लोग उसे पसन्द

नहीं करते। जमाअत का अन्दरूनी माहौल ऐसा होना चाहिए कि वह लोगों की तरफ़ से मिलनेवाली तरीफ़ और नुक्ताचीनी, दोनों से बेपरवाह होकर काम करने की ज़ेहनियत पैदा करे और उस ज़ेहनियत की परवरिश न करे जो किसी के बुरा-भला कहने से मायूस और दुखी हो और तारीफ़ से ख़ुश हो। इसके बावजूद अगर कुछ लोग जमाअत में ऐसे पाए जाएँ जिनमें दिखावे की गंध महसूस हो तो उनकी हिम्मत बढ़ाने के बजाय उनके इलाज की फ़िक्र करनी चाहिए।

नीयत का खोट

तीसरी बुनियादी ख़राबी नीयत का खोट है, जिसपर किसी भलाई की इमारत क़ायम नहीं हो सकती। भलाई का काम सिर्फ़ उस ख़ालिस नीयत ही से हो सकता है कि दुनिया में भलाई फैले और हम उसके लिए कोशिश करके अल्लाह के यहाँ कामयाब ठहरें। इस नीयत के साथ अपनी कोई ज़ाती या गरोही ग़रज़ शामिल न होनी चाहिए। अपना दुनियावी फ़ायदा सामने न होना चाहिए, यहाँ तक कि किसी बहाने से भी इस भले मक़सद के साथ अपने किसी फ़ायदे की चाह या उम्मीद की डोर न बँधी रहनी चाहिए। ऐसी हर ग़रज़ न सिर्फ़ यह कि अल्लाह के यहाँ आदमी के अज्र (इनाम) को बरबाद कर देगी बल्कि दुनिया में भी इस गंदगी को लिए हुए कोई सही काम न कर सकेगा। नीयत की ख़राबी ज़रूर ही किरदार पर अपना असर डालेगी, और किरदार की ख़राबी के साथ इस जिद्दो-जुहद में कामयाब होना मुमकिन नहीं है, जिसका अस्ल मक़सद बुराई को मिटाकर भलाई को क़ायम करना है।

यहाँ फिर वही मुश्किल सामने आती है जिसकी तरफ़ हम इशारा कर चुके हैं। छोटी-छोटी भलाइयों के लिए काम करने की सूरत में नीयत के इस खोट से पाक रखना कुछ ज़्यादा मुश्किल नहीं है। थोड़ा-सा अल्लाह से ताल्लुक़ और सच्चा जज़बा भी इसके लिए काफ़ी हो सकता है। मगर जिन लोगों की नज़रों के सामने यह काम हो कि एक पूरे देश के निज़ाम का सुधार किया जाए और उसे पूरी तरह उन बुनियादों पर क़ायम किया जाए जो ख़ुदा हमारे पालनहार ने हमें दी हैं, वे अपने मक़सद को हासिल करने के लिए

सिर्फ़ लोगों के ख़यालात सुधारने या सिर्फ़ तबलीग़ व नसीहत करने या सिर्फ़ अख़लाक़ सुधारने के कोशिशों पर बस नहीं कर सकते, बल्कि इसके साथ-साथ उन्हें ज़रूर देश के सियासी निज़ाम की दिशा भी अपने मक़सद की तरफ़ मोड़ने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिद्दो-जुहद करनी पड़ती है ताकि सत्ता की बागडोर या तो सीधे-सीधे उनके हाथ में आए या किसी ऐसे गरोह को मिल जाए जिसे उनका समर्थन और सहयोग प्राप्त हो। दोनों सूरतों में से चाहे कोई भी सूरत हो, सत्ता का ख़याल सियासी निज़ाम के बदलाव से अलग नहीं हो सकता। अब तो नदी की गहराई में रहकर दामन भीगने न देने का मामला है कि एक जमाअत यह काम करे और पूरी लगन के साथ करे और फिर भी उसके लोगों की ज़ाती नीयतों और पूरी जमाअत की मजमूई नीयत को अपने लिए सत्ता का लालच न लगने पाए। इसके लिए बहुत ज़्यादा मन को क़ाबू में करने और दिल और रूह को बहुत ज़्यादा निखारने की ज़रूरत है।

इस मामले में सही नज़रिया पैदा करने के लिए तो बज़ाहिर एक जैसी दो चीज़ों का जौहरी (तात्विक) फ़र्क़ अच्छी तरह ज़ेहन में रखना चाहिए। यह बात तो ज़ाहिर है कि पूरी निज़ामे-ज़िन्दगी की तब्दीली चाहनेवाला दूसरे तब्दीलियों के साथ सियासी निज़ाम का बदलाव भी चाहता है और यह काम आप-से-आप इस बात का तक़ाज़ा करता है कि सत्ता की बागडोर उन लोगों या उनकी पसन्द के लोगों के हाथों में आ जाए जो इस तब्दीली के ख़ाहिशमन्द हों। मगर फ़र्क़ और बहुत बड़ा फ़र्क़ है 'अपने लिए' इक़्तिदार चाहने और अपने 'उसूल और मक़सद' के लिए इक़्तिदार चाहने में। उसूल कर इक़्तिदार चाहे अमली तौर से उसूल के अलमबरदारों ही के हाथों में हो, फिर भी 'उसूल का इक़्तिदार' चाहना और उसके अलमबरदारों का 'अपने लिए इक़्तिदार चाहना' हक़ीक़त में दो अलग-अलग चीज़ें हैं, जिनमें रूह और जौहर (सत्) का बहुत बड़ा फ़र्क़ है। नीयत का खोट दूसरी चीज़ में है, न कि पहली चीज़ में। और नफ़्स (मन) को जिस चीज़ पर आमादा करना चाहिए, वह यह है कि पहली चीज़ के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगा देने पर भी दूसरी चीज़ का ज़ेहन में हल्का सा ख़याल तक न आने पाए। नबी

(सल्ल॰) और सहाबा (रज़ि॰) का नमूना हमारे सामने है। उन्होंने पूरी निज़ामे-ज़िन्दगी को बदलकर इस्लाम के उसूलों पर क़ायम करने की जिद्दो-जुहद की। यह चीज़ सियासी ग़लबे और इक़्तिदार का भी तक़ाज़ा करती थी क्योंकि दीन को पूरी तरह ग़ालिब कर देना इसके बिना मुमकिन न था और अमली तौर पर इस जिद्दो-जुहद के नतीजे में इक़्तिदार की बागडोर उनके हाथ में आई भी लेकिन इसके बावजूद कोई ईमानदार आदमी यह शक तक नहीं कर सकता कि उनकी जिद्दो-जुहद का मक़सद 'अपना इक़्तिदार' था। दूसरी तरफ़ अपना इक़्तिदार चाहनेवालों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं और इतिहास में उनको ढूंढ़ने की क्या ज़रूरत है, हमारी आँखों के सामने वे दुनिया में मौजूद हैं। अमलन इक़्तिदार पाने को अगर एक घटना के रूप में लिया जाए तो दोनों गरोह में कोई फ़र्क़ नहीं, लेकिन नीयत के लिहाज़ से दोनों में बहुत बड़ा फ़र्क़ है। इस फ़र्क़ पर दोनों का किरदार, जिद्दो-जुहद के दौर का किरदार भी और कामयाबी के दौर का किरदार भी ऐसी गवाही दे रहा है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। जो लोग सच्चे दिल से इस्लाम के मुताबिक़ ज़िन्दगी के निज़ाम का हमागीर इक़्तिदार चाहते हों उन्हें अलग-अलग अपने तौर पर भी इस फ़र्क़ को ठीक-ठीक समझकर अपनी नीयत दुरुस्त रखनी चाहिए और उनकी जमाअत को इकट्ठे रूप से भी इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि 'अपना इक़्तिदार चाहने' की नीयत किसी रूप में भी उनके अन्दर जगह न पा सके।

इनसानी कमज़ोरियाँ

इसके बाद दूसरा दर्जा उन बुराइयों का है जो बुनियाद को तो नहीं ढातीं मगर अपने असर के लिहाज़ से काम बिगाड़नेवाली हैं और अगर ढिलाई और लापरवाही बरतकर उनको परवरिश पाने का मौक़ा दिया जाए तो तबाह करनेवाली साबित होती हैं। शैतान उन्हीं हथियारों से भलाई की राह रोकने और इनसानी कोशिशों को भलाई से बुराई की तरफ़ मोड़ने और समाज में बिगाड़ डलवाने का काम लेता है। हालाँकि समाज को ठीक रखने के लिए हर हाल में इन ख़राबियों का दूर करना ज़रूरी है लेकिन ख़ास तौर से उन लोगों और जमाअतों को तो उनसे बिलकुल पाक रहना चाहिए जिनके सामने समाज का सुधार और सच्चे दीन को क़ायम करने का बड़ा मक़सद हो।

इस तरह की बुराइयों का गहरी नज़र से जाइज़ा लिया जाए तो मालूम होता है कि ये इनसान की कुछ ख़ास कमज़ोरियों से निकलती हैं, जिनमें से हर एक कमज़ोरी बुराइयों के एक पूरे ख़ानदान को जन्म देती है। आसानी से समझने का मुनासिब तरीक़ा यह होगा कि हम एक कमज़ोरी को लेकर पहले उसकी हक़ीक़त को समझें। फिर यह देखें कि वह किस तरह धीरे-धीरे बुराई में ढलती है और फल-फूलकर क्या ख़राबियाँ पैदा करती है। इस तरह हर बुराई का सिरा हमें मिल जाएगा और हम जान सकेंगे कि उसके सुधार के लिए किस जगह तदबीर का मरहम इस्तेमाल करना चाहिए।

ख़ुदपरस्ती

इनसान की कमज़ोरियों में सबसे बड़ी और सबसे ज़्यादा बिगाड़ पैदा करनेवाली कमज़ोरी 'नफ़्सानियत' या ख़ुदपरस्ती, है। इसकी बुनियाद तो ख़ुद से मुहब्बत का वह फ़ितरी जज़बा है जो अपने आप में कोई बुरी चीज़ नहीं, बल्कि अपनी हद के अन्दर ज़रूरी भी है और फ़ायदेमन्द भी। अल्लाह तआला ने यह जज़बा इनसान की फ़ितरत में उसकी भलाई के लिए रखा है ताकि वह अपनी हिफ़ाज़त और अपनी भलाई और तरक़्क़ी के लिए कोशिश करे। लेकिन जब यही जज़बा शैतान की उकसाहट से यह शक्ल

इख़्तियार कर लेता है कि कोई अपने से इश्क़, अपनी परस्तिश और अपनी ज़ात ही को मरकज़ (केन्द्र) समझने लगता तो इस जज़्बे से भलाई फूटने के बजाय बुराई पैदा होने लगती है और फिर जैसे-जैसे वह तरक़्क़ी करता है उससे बुराइयों का एक नया सिलसिला वुजूद में आता चला जाता है।

ख़ुदपसन्दी

बुराई की तरफ़ इस जज़्बे के बढ़ने की शुरुआत इस तरह होती है कि आदमी अपनी जगह अपने आप को बुराइयों से पाक और तमाम ख़ूबियों का मालिक समझ बैठता है। अपनी कमियों और कमज़ोरियों का एहसास करने से बचता है और अपनी हर कमी या ग़लती का मनमाना मतलब निकाल करके अपने दिल को मुत्मइन कर लेता है कि मैं हर लिहाज़ से बहुत अच्छा हूँ। यह ख़ुदपसन्दी पहले ही क़दम पर उसके सुधार और तरक़्क़ी का दरवाज़ा उसके अपने हाथों बन्द कर देती है।

फिर जब यह "मैं तो बहुत अच्छा हूँ" का एहसास लिए हुए आदमी इज्तिमाई ज़िन्दगी में आता है तो उसकी यह ख़ाहिश होती है कि जो कुछ उसने अपने आप को मान रखा है वही कुछ दूसरे भी उसे समझें। वह सिर्फ़ तारीफ़ सुनना चाहता है। तंक़ीद (आलोचना) उसे गवारा नहीं होती। भलाई के जज़्बे से की गई नसीहत तक से उसकी ख़ुदी (स्वाभिमान) को ठेस लगती है। इस तरह यह शख़्स अपने लिए सुधार के अन्दरूनी साधनों का भी रास्ता बन्द कर लेता है।

मगर कोई शख़्स भी दुनिया में ऐसा नहीं हो सकता जिसको इज्तिमाई ज़िन्दगी में हर लिहाज़ से अपनी ख़ाहिश और अपनी पसन्द ही के मुताबिक़ हालात मिल जाएँ। ख़ास तौर से ख़ुदपसन्द और ख़ुदपरस्त आदमी को तो यहाँ हर तरफ़ से चरके लगते रहते हैं क्योंकि उसकी ख़ुदी अपने अन्दर उन वजहों को लिए हुए आती है जो समाज की अनगिनत ख़ूबियों के साथ उसके टकराव को ज़रूरी बना देते हैं, और कुल मिलाकर समाज के हालात भी उसकी उम्मीदों और ख़ाहिशों से ख़ाहमख़ाह टकराते हैं। यह सूरते-हाल उस शख़्स को सिर्फ़ इस हद पर नहीं रहने देती कि वह बस अपने सुधार

के अन्दरूनी और बाहरी साधनों से महरूम होकर रह जाए बल्कि दूसरों के टकराव से चरके और उम्मीदों के टूटने के सदमे उसकी घायल ख़ुदी को लगातार एक-से-एक बढ़कर बुराई में मुब्तला करते चले जाते हैं। वह बहुत-से लोगों को ज़िन्दगी में अपने से बेहतर पाता है। बहुत से लोगों के बारे में वह महसूस करता है कि समाज उनको उनसे ज़्यादा मान दे रहा है। बहुत-से लोग उसको वह मान नहीं देते जिसकी वह चाह रखता है। बहुत से-लोग उसके उन रुतबों तक पहुँचने में रुकावट होते हैं, जिनका वह अपने आपको हक़दार समझता है। बहुत-से लोग उसकी आलोचना करते हैं, बल्कि उसे बुरा तक साबित कर डालते हैं। ये तरह-तरह के हालात उसके दिल में किसी के ख़िलाफ़ खोट और कपट की आग भड़का देते हैं। वह दूसरों के हालात जानने की टोह में रहता हैं। दूसरों के ऐब ढूँढ़ता है, पीठ पीछे बुराइयाँ करता है और पीठ पीछे बुराइयाँ सुनकर मज़ा लेता है। चुग़लख़ोरी करता है। कानाफूसियाँ और साज़िशें करता फिरता है। अगर उसके अख़लाक़ की बंदिशें ढीली हों या इन मशग़लों में लगातार लगे रहने से ढीली हो जाएँ तो फिर इन गुनाहों से बढ़कर, झूठ, गढ़ी हुई बातें; झूठे इलज़ाम और दूसरे ज़्यादा बड़े जुर्म करने लगता है। इन बुराइयों के चक्कर में फँसकर वह अख़लाक़ की इन्तिहाई गिरावटों तक पहुँचने से नहीं बच सकता, सिवाय यह कि किसी जगह पहुँचकर उसे ख़ुद ही अपनी इस शुरुआती ग़लती का एहसास हो जाए, जिसने उसे इस रास्ते पर डाला था।

यह कैफ़ियत अगर किसी एक शख़्स की हो तो उससे कोई इज्तिमाई बिगाड़ पैदा नहीं होता। उसका असर ज़्यादा-से-ज़्यादा कुछ लोगों तक पहुँचकर रह जाता है, लेकिन अगर इसी ख़ुदपरस्ती के बहुत-से रोगी मौजूद हों तो उनके बिगाड़ से पूरी इज्तिमाई ज़िन्दगी में बिगाड़ फैल जाता है। ज़ाहिर बात है कि जहाँ आपस की बदगुमानी, टोह लेना, कमियाँ निकालना, पीठ पीछे बुराई और चुग़लख़ोरी का एक सिलसिला चल रहा हो, जहाँ बहुत-से लोग दिलों में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ बुराई पाल रहे हों और कपट और जलन की वजह से एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में लगे हुए हों और जहाँ बहुत-से घायल स्वाभिमान बदले की भावना से भरे हों, वहाँ

फूट पड़े बिना नहीं रह सकती। वहाँ कोई चीज़ धड़े-बन्दियों को रोक नहीं सकती। वहाँ किसी सकारात्मक सहयोग का तो दूर, ताल्लुक़ की ख़ुशगवारी तक का इमकान बाक़ी नहीं रहता। ऐसे माहौल में खिंचाव और टकराव ज़रूरी है और वह सिर्फ़ ख़ुदपरस्ती के रोगियों तक ही महदूद नहीं रहता बल्कि धीरे-धीरे अच्छे-ख़ासे भले मिज़ाज के लोग इसमें मुबतला होते चले जाते हैं। इसलिए कि एक भले मिज़ाज का आदमी तो मुँह पर मुनासिब आलोचना ही को नहीं, नामुनासिब आलोचना को भी गवारा कर सकता है, मगर पीठ पीछे बुराई उसके दिल में मैल पैदा किए बिना नहीं रहती और इसका कम-से-कम इतना असर तो होता ही है कि पीठ पीछे बुराई करनेवालों पर भरोसा करना उसके लिए मुमकिन नहीं रहता। इसी तरह एक अच्छे दिल का आदमी उन सब ज़्यादतियों को माफ़ कर सकता है जो कपट या जलन के सबब उसके साथ की जाएँ, वह बुरा-भला कहने, इलज़ाम लगाने, झूठे प्रोपगण्डे और इनसे भी ज़्यादा तकलीफ़देह चीज़ों को भी अनदेखा कर सकता है लेकिन उसके लिए यह मुमकिन नहीं होता कि जिन लोगों से इन बुरी आदतों का ज़ाती तजरिबा उसको हो चुका हो उनसे वह इत्मीनान के साथ कोई मामला कर सके। इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जिस इज्तिमाई माहौल में ये ख़राबियाँ काम करने लगती हैं वह किस तरह शैतान की मनभाती चरागाह बनकर रहता है। यहाँ तक कि उसमें अच्छे-से-अच्छे आदमी भी चाहे टकराव से बच जाएँ, मनमुटाव से नहीं बचे रह सकते।

इसके बाद यह कहने की ज़रूरत बाक़ी नहीं रह जाती कि जो लोग सुधार और बनाव के काम के लिए मिल-जुलकर कोशिश करना चाहते हों, उनकी जमाअत का ऐसे लोगों से पाक होना कितना ज़रूरी है। हक़ीक़त यह है कि नफ़्सानियत या ख़ुदपरस्ती के कीटाणु ऐसी जमाअत के लिए महामारी और हैज़े के कीटाणुओं से ज़्यादा ख़तरनाक हैं। इनकी मौजूदगी में किसी अच्छे तामीर के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

तौबा-इस्तिग़फ़ार

अल्लाह की शरीअत इस रोग की शुरुआत से इसका इलाज शुरू करती है और फिर हर मरहले पर उसको रोकने के लिए हिदायत देती है। क़ुरआन

व हदीस में जगह-जगह ईमानवालों को तौबा व इस्तिग़फ़ार की जो नसीहत की गई है, उसका मंशा यही है कि मोमिन किसी वक़्त भी ख़ुदपसन्दी में मुब्तला न हो। कभी अपने आपको बड़ी चीज़ न समझे। हर वक़्त अपनी कमज़ोरियों और कमियों को महसूस करता रहे और अपनी ख़ताओं और ग़लतियों को क़बूल करता रहे और बड़े-से-बड़ा कारनामा अंजाम देने के बाद भी उसपर फूलने के बजाय आजिज़ी (विनम्रता) के साथ अपने ख़ुदा के सामने यही दरख़ास्त पेश करे कि ख़िदमत में जो कमियाँ रह गई हैं उनको अनदेखा कर दिया जाए। नबी (सल्ल॰) से बढ़कर ख़ूबियों का मालिक और कौन हो सकता है! और आप (सल्ल॰) से बड़ा कारनामा दुनिया में किस इनसान ने अंजाम दिया है! मगर इतिहास के इस सबसे बड़े कारनामे को इन्तिहा तक पहुँचाकर जब आप (सल्ल॰) फ़ारिग़ हुए तो अल्लाह के दरबार से जो नसीहत आप (सल्ल॰) को की गई वह यह थी—

> "जब अल्लाह की मदद आ गई और फ़तह हासिल हो गई और तुमने लोगों को अल्लाह के दीन में फ़ौज-दर-फ़ौज दाख़िल होते देख लिया तो अब अपने रब की तारीफ़ के साथ उसकी तस्बीह (महिमागान) करो और उससे माफ़ी चाहो, यक़ीनन वह बड़ा तौबा क़बूल करनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-110 नस्र, आयत-1-3)

यानी जो बड़ा काम तुमने कर लिया उसके बारे में तुम यह समझो कि इसकी तारीफ़ तुम्हें नहीं बल्कि तुम्हारे रब को पहुँचती है, जिसकी मेहरबानी से तुम इतना बड़ा काम कर दिखाने में कामयाब हुए। और अपने बारे में तुम्हारा एहसास यही होना चाहिए कि जो ख़िदमत का हक़ था वह फिर भी अदा न हुआ। इसलिए इनाम माँगने के बजाय अपने रब से यह दुआ करो कि ख़िदमत में जो कुछ कसर रह गई है उसे माफ़ कर दीजिए। चुनाँचे बुख़ारी में हज़रत आइशा (रज़ि॰) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अपने इन्तिक़ाल से पहले अकसर कहा करते थे—

> "सुब्हानल्लाहि व बिहम्दिही अस्तग़फ़िरुल्लाहि व अतूबु इलैह" (मैं अल्लाह की हम्द के साथ उसकी तस्बीह करता हूँ और अल्लाह से मग़फ़िरत माँगता हूँ और उसके सामने तौबा करता हूँ)।

और वैसे भी तौबा व इस्तिग़फ़ार हमेशा ही नबी (सल्ल॰) के रोज़ के कामों में शामिल था। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि उन्होंने नबी (सल्ल॰) को फ़रमाते सुना—

"अल्लाह की क़सम! मैं हर रोज़ सत्तर बार से ज़्यादा अल्लाह से इस्तिग़फ़ार और तौबा करता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

इस तालीम की रूह अगर कोई शख़्स अपने अन्दर बिठा ले तो उसके ज़ेहन में नफ़सानियत (ख़ुदपरस्ती) का वह बीज कभी जड़ ही नहीं पकड़ सकता, जो बड़ा और हरा-भरा होकर फ़ितना व बिगाड़ के ज़हरीले फल देता है।"

सच बात बोलना

इस बात पर भी अगर मन में यह ख़राबी पैदा हो ही जाए तो अल्लाह की शरीअत अख़लाक़ और अमली रवैये में इसके ज़ाहिर होने और बढ़ने से हर क़दम पर रोकती है, और इसके बारे में सख़्त अहकाम देती है। मिसाल के तौर पर यह पहले तो इस रूप में ज़ाहिर होती है कि आदमी अपने आपको तंक़ीद (आलोचना) से परे समझता और मनवाने की कोशिश करता है और इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई शख़्स उसे ग़लती पर टोके। अल्लाह की शरीअत इसके बरख़िलाफ़ भलाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने को तमाम ईमानवालों पर लाज़िम करती है। और ख़ास तौर पर हुक्मराँ ज़ालिमों के मुक़ाबले में सच बात कहने को तो सबसे आला दरजे का जिहाद बताती है ताकि मुस्लिम-समाज में बुराई पर टोकने और भलाई की नसीहत करने का ऐसा माहौल पैदा हो जाए जिसमें ख़ुदपरस्ती पनप ही न सके।

ईर्ष्या और जलन

यह नफ़्सपरस्ती और ख़ुदपरस्ती दूसरी तरफ़ ईर्ष्या और जलन की शक्ल में ज़ाहिर होती है, जिसे आदमी हर शख़्स के ख़िलाफ़ दिल में पालना शुरू कर देता है, जिससे उसकी ख़ुदपरस्ती पर चोट लगी हो और फिर उससे ताल्लुक़ात की ख़राबी शुरू होती है। अल्लाह की शरीअत इस चीज़ को गुनाह ठहराती है और इसपर सख़्त अज़ाब की धमकी देती है। नबी करीम

(सल्ल॰) का इरशाद है—

"ख़बरदार! हसद (ईर्ष्या) न करो, क्योंकि हसद नेकियों को इस तरह खा जाता है जैसे आग सूखी लकड़ियों को चट कर जाती है।"

हदीसों में कई अलफ़ाज़ के साथ नबी करीम (सल्ल॰) के ये ताकीदी हुक्म आए हैं—

"एक-दूसरे से बोल-चाल बन्द न करो। किसी मुसलमान के लिए हलाल नहीं कि तीन दिन से ज़्यादा अपने मुसलमान भाई से ताल्लुक़ात तोड़े रखे।"

बदगुमानी

ख़ुदपरस्ती का तीसरा क़दम बदगुमानी की तरफ़ उठता है और फिर टोह में पड़कर आदमी दूसरों की ख़राबियाँ टटोलने लगता है। बदगुमानी की हक़ीक़त यह है कि आदमी अपने सिवा हर एक के बारे में शुरू से यह मानकर चलता है कि वह ज़रूर बुरा है और बज़ाहिर उसकी जो चीज़ एतिराज़ के क़ाबिल नज़र आती है उसका कोई अच्छा मतलब लेने के बजाय हमेशा बुरा मतलब लेता है और जाँच-पड़ताल की ज़रूरत भी नहीं समझता। दूसरों की टोह में पड़ना इसी बदगुमानी का एक नतीजा है। आदमी दूसरों के बारे में पहले एक बुरी राय क़ायम करता है फिर उसका सुबूत जुटाने के लिए उनके हालात की टोह लगानी शुरू करता है। क़ुरआन इन दोनों चीज़ों को गुनाह ठहराता है। सूरा-49, हुजुरात में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"बहुत गुमान करने से बचो क्योंकि कुछ गुमान गुनाह होते हैं, और टोह में न पड़ो।"

हदीस में नबी (सल्ल॰) का इरशाद है—

"ख़बरदार! बदगुमानी न करो, क्योंकि बदगुमानी सबसे बुरा झूठ है।"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) की रिवायत है—

"हमको टोह लगाने और ऐब टटोलने से मना किया गया है। अलबत्ता अगर हमारे सामने कोई बात खुल जाए तो हम उसको

पकड़ेंगे।"

हज़रत मुआविया (रज़ि॰) का बयान है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अगर तुम मुसलमानों के छिपे हालात की खोज-कुरेद करोगे तो उनको बिगाड़ दोगे।"

ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई करना)

इन मरहलों के बाद ग़ीबत का दौर शुरू होता है। उसकी बुनियाद चाहे बदगुमानी पर हो या हक़ीक़त पर, दोनों सूरतों में किसी शख़्स की बेइज़्ज़ती करने और उसकी बेइज़्ज़ती से मज़ा लेने या फ़ायदा उठाने की ख़ातिर पीठ पीछे उसकी बुराई करना 'ग़ीबत' है। हदीस में इसका मतलब यह बताया गया है—

"तेरा अपने भाई की ग़ैर-मौजूदगी में उसका ज़िक्र इस तरह करना कि उसे मालूम हो तो नागवार हो।"

"नबी (सल्ल॰) से पूछा गया कि अगर हमारे भाई में वह बुराई मौजूद हो, जिसका ज़िक्र किया गया है तो क्या फिर भी ग़ीबत होगी?

फ़रमाया : अगर उसमें वह बुराई है जो तूने बयान की तो ग़ीबत की, और अगर उसमें वह नहीं है तो ग़ीबत से बढ़कर बुहतान (झूठा इलज़ाम) लगाया।"

क़ुरआन इस हरकत को हराम ठहराता है। क़ुरआन में है—

"और तुममें से कोई किसी की ग़ीबत न करे। क्या तुममें से कोई यह पसन्द करेगा कि वह अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाए? उससे तुम ज़रूर नफ़रत करोगे।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-12)

नबी करीम (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"हर मुसलमान की जान-माल और इज़्ज़त दूसरे मुसलमान पर हराम है।"

इससे अलग सिर्फ़ वे हालात हैं जिनमें किसी की बुराई करने की जाइज़

ज़रूरत है और उसमें किसी का बुरा चाहने की नीयत न हो। मसलन किसी मज़लूम की इसलिए शिकायत करना कि कोई उसकी फ़रियाद सुन सके। इसकी इज़ाज़त ख़ुद क़ुरआन में दी गई है—

"अल्लाह बुरी बात खुल्लम-खुल्ला कहने को पसन्द नहीं करता, मगर उसकी बात और है जिसपर ज़ुल्म किया गया हो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-148)

या मसलन एक शख़्स दूसरे शख़्स से अपनी बेटी की शादी कर रहा हो या उससे कोई कारोबारी मामला तय कर रहा हो और दोनों फ़रीक़ों में से कोई इस मामले में किसी जाननेवाले से मशवरा ले। इस हालत में जो बुराई वाक़ई आदमी की जानकारी में हो उसे उस आदमी के साथ भलाई करने के मक़सद से बयान कर देना न सिर्फ़ जाइज़ है बल्कि ज़रूरी है। ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ऐसे मौक़ों पर बुराई बयान की है। चुनाँचे हदीस में आता है कि दो आदमियों नें फ़ातिमा-बिन्ते-क़ैस (रज़ि॰) को निकाह का पैग़ाम दिया। उन्होंने नबी (सल्ल॰) से मशवरा माँगा। आप (सल्ल॰) ने उन्हें ख़बरदार किया कि उनमें से एक साहब कंगाल हैं और दूसरे साहब बीवियों को पीटने के आदी हैं। इसी तरह शरीअत को नाक़ाबिले-एतिबार रावियों (उल्लेखकर्ताओं) की रिवायत से बचाए रखने के लिए उनकी बुराइयों को बयान करना उम्मत के तमाम उलमा ने जाइज़ रखा है और हदीस के इमामों ने अमली तौर से यह काम किया है। क्योंकि दीन के लिए इसकी ज़रूरत थी। अल्लाह की मख़लूक़ पर खुल्लम-खुल्ला ज़ुल्म करनेवालों और गुनाह और बुराई के काम फैलानेवालों और खुले-खुले बदकिरदार लोगों की ग़ीबत करना भी जाइज़ है और नबी (सल्ल॰) के अपने अमल से इसका जाइज़ होना साबित होता है। इस तरह की कुछ सूरतों के सिवा ग़ीबत हर हाल में हराम है और उसका सुनना भी गुनाह है। सुननेवालों पर लाज़िम है कि या तो ग़ीबत करनेवालों को रोकें या उस शख़्स का बचाव करें जिसकी ग़ीबत की जा रही हो, या यह भी न कर सकें तो उस महफ़िल से उठ जाएँ, जहाँ उनके मरे हुए भाई का गोश्त खाया जा रहा हो।

चुग़लख़ोरी

ग़ीबत से जो आग लगती है उसे फैलाने का काम चुग़लख़ोरी पूरा कर देती है और उसमें भी अस्ल मुहर्रिक (उत्प्रेरक) वही ख़ुदपरस्ती का जज़बा होता है। चुग़लख़ोर किसी का भी भला चाहनेवाला नहीं होता। न उसका जिसकी बुराई की गई हो और न उसका जिससे बुराई की हो। वह दोस्त दोनों का बनता है मगर अस्ल में दोनों का बुरा चाहनेवाला होता है। इसी लिए एक-एक की बात कान लगाकर सुनता है और उसकी काट नहीं करता। फिर दोस्त को उसकी ख़बर पहुँचाता है ताकि जो आग अब तक एक जगह लगी हुई थी वह दूसरी जगह भी लग जाए। अल्लाह की शरीअत में इस चीज़ को हराम किया गया, क्योंकि यह बिगाड़ फैलाने में ग़ीबत से भी बढ़कर है। क़ुरआन मजीद में जिन आदतों को आदमी की सबसे बुरी आदतों में गिना गया है उनमें से एक चुग़लख़ोरी करते फिरना भी है। हदीस में नबी (सल्ल॰) का इरशाद है—

"कोई चुग़लख़ोर जन्नत में दाख़िल नहीं हो सकता।"

एक दूसरी हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—
"तुम सबसे बुरा इनसान उस शख़्स को पाओगे जिसके दो मुँह हैं। कुछ लोगों के पास एक मुँह लेकर आता है और कुछ दूसरे लोगों के पास दूसरा मुँह लेकर जाता है।"

सही इस्लामी रवैया यह है कि आदमी जहाँ किसी की ग़ीबत सुने या तो उसे रद्द कर दे या फिर दोनों लोगों की मौजूदगी में इस मामले को छेड़कर उसकी सफ़ाई ऐसे तरीक़े से कराए जिससे एक शख़्स को यह शक न हो कि दूसरे शख़्स ने इसकी मौजूदगी में मेरी बुराई की थी। और ग़ीबत किसी ऐसी बुराई पर हो जो सचमुच उस शख़्स में पाई जाती हो तो एक तरफ़ ग़ीबत करनेवाले को उसके गुनाह पर ख़बरदार करे और दूसरी तरफ़ उस शख़्स को भी अपने सुधार के लिए ध्यान दिलाए, जिसकी बुराई बयान की गई थी।

खुसर-फुसर और कानाफूसियाँ

बिगाड़ के इस सिलसिले की आख़िरी कड़ी 'नजवा' है जिसका मतलब

है खुसर-फुसर, कानाफूसियाँ और गुपचुप मशवरे करना, जिनसे आख़िरकार साज़िशों और जत्थे-बन्दियों तक नौबत पहुँचती है और एक-दूसरे के ख़िलाफ़ कशमकश करनेवाले धड़े वुजूद में आते हैं। अल्लाह की शरीअत इसको भी सख़्ती के साथ मना करती है। क़ुरआन मजीद में इसको एक शैतानी हरकत बताया गया है—

"नजवा तो शैतान की तरफ़ से होता है।" और इसके बारे में यह उसूली हिदायत दी गई है—

"जब तुम लोग आपस में सरगोशियों में बात करो तो गुनाह और रसूल की नाफ़रमानी और सरकशी के लिए न करो बल्कि नेकी और तक़वा के लिए करो।"

यानी दो या चन्द आदमियों का अलग होकर बात करना अगर अच्छे और नेक मक़सदों के लिए और तक़वा की हदों में हो तो उस नजवा के दायरे में नहीं आता जो मना है। अलबत्ता वह बातचीत ज़रूर नजवा और मना किए गए नजवा के दायरे में आती है जो जमाअत से आँख बचाकर छिपाए रखने के एहतिमाम के साथ इस ग़रज़ के लिए की जाए कि किसी बड़े काम की योजना बनानी है। या किसी दूसरे शख़्स या गरोह के ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही करनी है या अल्लाह के रसूल के हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी करनी है। ईमानदारी और सच्चे दिल से किए गए इख़्तिलाफ़ (मतभेद) कभी नजवा (खुसर-फुसर करने) का सबब नहीं बनते। उनकी बातचीत खुल्लम-खुल्ला होती है। पूरी जमाअत के सामने होती है। दलील के साथ अपनी बात मनवाने या मान लेने के लिए होती है और इस बातचीत से अगर मतभेद बाक़ी भी रह जाते हैं तो वे कभी बिगाड़ का सबब नहीं बनते। जमाअत से अलग हटकर गुपचुप खुसर-फुसर करने की ज़रूरत उन्हीं मतभेदों में पड़ती है जो अगर बिलकुल ख़ुदपरस्ती पर आधारित न भी हों, कम-से-कम उनमें ख़ुदपरस्ती की मिलावट ज़रूर होती है। ऐसी सरगोशियाँ कभी अच्छा नतीजा पैदा नहीं करतीं। उनकी शुरुआत चाहे कितनी ही सीधे-सादे तरीक़े से हुई हो, धीरे-धीरे वे पूरी जमाअत को आपस की बदगुमानियों, गुटबाज़ियों और धड़ेबन्दियों की छूत लगा देती हैं। आपस में खुसर-फुसर करके जब चन्द

आदमी एक जत्थे की शक्ल में सामने आते हैं तो फिर दूसरे लोगों में भी ऐसी ही खुसर-फुसर करने और जत्थे बनाने का रुझान पैदा हो जाता है। और यहीं से उस बिगाड़ की शुरुआत होती है जो बेहतरीन, नेक और भले लोगों की जमाअतों को भी टुकड़े-टुकड़े करके आपस में गुत्थम-गुत्था कर देता है। आख़िरी मरहला वह है जबकि यह बिगाड़ अमली तौर पर पैदा हो जाए। यह वह चीज़ है जिससे नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को रोका और बार-बार ख़बरदार किया है। शिद्दत के साथ डराया है और सख़्ती के साथ बचने की ताक़ीद की है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि शैतान अब इस बात से मायूस हो चुका है कि अरब में जो लोग नमाज़ पढ़ने लगे हैं, वे फिर उसकी इबादत करने लगेंगे। अब उसकी सारी उम्मीदें सिर्फ़ लोगों के अन्दर बिगाड़ पैदा करने और उनको आपस में लड़ाने ही से जुड़ी रह गई हैं।

यही नहीं, आप (सल्ल॰) ने यहाँ तक फ़रमाया कि मेरे बाद काफ़िर न हो जाना कि एक-दूसरे की गर्दन मारने लगो।

इस तरह की हालत पैदा हो जाने की सूरत में ईमानवालों को जो तरीक़ा सिखाया गया है वह यह है कि अव्वल तो आदमी ख़ुद फ़ितने और बिगाड़ में हिस्सा लेने से बचे ख़ुशक़िस्मत है वह जो फ़ितनों से बच गया और जो जितना भी उससे दूर रहे, उतना ही ज़्यादा अच्छा है। इस हालत में सोनेवाला जागनेवाले से बेहतर है और खड़ा हुआ दौड़नेवाले से बेहतर है। दूसरे अगर वह हिस्सा ले तो लड़नेवालों में से एक फ़रीक़ (पक्ष) बनकर नहीं बल्कि सच्चे दिल से सुधार की कोशिश करनेवाला बनकर ले, जिसके बारे में साफ़-साफ़ हिदायतें सूरा-49 हुजुरात की शुरू की आयतों में दी गई हैं।

नफ़्सानियत (ख़ुदपसन्दी) की इस हक़ीक़त और उसके फलने-फूलने और सामने आने के इन दर्जों और हर दर्जे के बारे में अल्लाह की शरीअत के इन हुक्मों को ज़ेहन में बिठा लेना उन तमाम लोगों के लिए ज़रूरी है जो भलाई और सुधार का काम करने के लिए इकट्ठा हों। उनमें से हर एक शख़्स को पूरी कोशिश करनी चाहिए कि वह अपने आपको ख़ुदपसन्दी के रोग से बचाए और उन अख़लाक़ी व रूहानी नुक़्सानों को समझे, जो इस रोग में मुब्तला होने से पहुँचते हैं। उनकी ज़माअत को भी पूरी तरह इस मामले

में चौकन्ना रहना चाहिए कि कहीं उसके अन्दर ख़ुदपसन्दी के कीटाणुओं को अण्डे-बच्चे देने का मौक़ा न मिल जाए। उन्हें अपने दायरे में किसी ऐसे शख़्स की हिम्मत न बढ़ानी चाहिए जो ख़ुद की आलोचना सुनकर बिफर जाए, अपनी ग़लती मानने को अपनी शान के ख़िलाफ़ समझे। उन्हें हर उस शख़्स को दबाना चाहिए जिसकी बातों से कपट और दुश्मनी की गंध आए, या जिसका रवैया यह बता रहा हो कि वह किसी शख़्स से निजी रूप से बैर रखता है। उन्हें ऐसे लोगों की भी ख़बर लेनी चाहिए जो दूसरों के मामले में बदगुमानी से काम लें या दूसरों के हालात की टोह लगाकर उनकी बुराइयाँ तलाश करने की कोशिश करें। उन्हें अपनी सोसायटी में पीठ पीछे बुराई और चुग़लख़ोरी करने की आदतों को ख़त्म करना चाहिए, और जहाँ कहीं यह बला अपना सर निकाले, वहाँ फ़ौरन वह सीधा-सीधा इस्लामी रवैया इख़्तियार करना चाहिए जिसके बारे में ऊपर तफ़्सील से बताया जा चुका है। उन्हें ख़ास तौर से 'नजवा' (खुसर-फुसर करने) के ख़तरों से होशियार रहना चाहिए, क्योंकि यह जमाअत में गुटबाज़ी की शुरुआत है। किसी मुख़लिस (निष्ठावान) आदमी को इस बात के लिए हरगिज़ राज़ी न होना चाहिए कि कोई शख़्स कानाफूसी करके किसी इख़्तिलाफ़ी मसले में उसे अपना साथी बनाए और जिस वक़्त भी इस बात की शुरुआती अलामतें (लक्षण) ज़ाहिर हों कि कुछ लोग जमाअत में यह तरीक़ा अपना रहे हैं, उसी वक़्त जमाअत को उनके सुधार या फिर उनको सज़ा देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इन सारी कोशिशों के बावजूद अगर जमाअत के अन्दर किसी जत्थेबन्दी का फ़ितना पैदा हो ही जाए तो फिर ख़ुलूसवालों का काम यह नहीं है कि ख़ुद भी कोनों-खोदरों में जाकर गुपचुप कानाफूसियाँ करके कोई दूसरा जत्था बनाने के लिए जोड़-तोड़ शुरू कर दें, बल्कि उन्हें इस फ़ितने से अपना दामन बचाकर उसको रोकने के लिए हर शख़्स को अपने तौर पर तदबीरें करनी चाहिएँ और उनमें नाकाम होने के बाद जमाअत के सामने खुल्लम-खुल्ला इस मामले को लेकर आना चाहिए। जिस जमाअत में सच्चे लोगों की बहुतायत होगी, वह इस तरह के फ़ितनों से ख़बरदार होकर फ़ौरन ही उनको कुचल देगी और जिसमें फ़ितनापसन्द या बेफ़िक्र लोग ज़्यादा होंगे, वह इन्हीं फ़ितनों का शिकार होकर रह जाएगी।

मिज़ाज की बेएतिदाली (असन्तुलन)

दूसरा दर्जा उन ख़राबियों का है जिसके लिए सबसे मुनासिब नाम "मिज़ाज की बेएतिदाली (असन्तुलन)" है। नफ़सानियत (ख़ुदपसन्दी) के मुक़ाबले में यह एक मासूम-सी कमज़ोरी है क्योंकि इसमें किसी बदनीयती, किसी बुरे जज़बे, किसी नापाक ख़ाहिश का दख़ल नहीं होता, लेकिन ख़राबी पैदा करने की क़ाबिलियत के लिहाज़ से देखा जाए तो यह नफ़सानियत के बाद दूसरे नम्बर पर आती है। बहुत बार तो इसके असरात और नतीजे इतने ही ख़राब होते हैं, जितने नफ़सानियत के असरात व नतीजे।

मिज़ाज की बेएतिदाली का फ़ितरी नतीजा देखने और सोचने की बेएतिदाली और अमल व कोशिश की बेएतिदाली है और यह चीज़ ज़िन्दगी की हक़ीक़तों से सीधे तौर पर टकराती है। इनसानी ज़िन्दगी ऐसी अनगिनत चीज़ों का मिलन है जो आपस में एक दूसरे से टकरानेवाली हैं और बहुत-सी मुख़्तलिफ़ मुहर्रिक चीज़ों के मिलकर किए गए अमल का नतीजा है। जिस दुनिया में इनसान रहता है उसका भी यही हाल है। इनसानों में से हर एक को अलग-अलग भी ऐसा ही बनाया गया है। और इनसानों के मिलने से जो इज्तिमाई शक्ल बनती है उसकी कैफ़ियत भी यही है। इस सारी ज़िन्दगी में काम करने के लिए फ़िक्र और नज़रिये का तथा कोशिश व अमल का ऐसा एतिदाल (सन्तुलन) चाहिए जो कायनात के मिज़ाज के एतिदाल (सन्तुलन) के साथ ज़्यादा मेल खाता हो। हालात के हर पहलू पर निगाह रखी जाए। मामलों के हर रुख़ को देखा जाए। ज़रूरतों के हर हिस्से को उसका हक़ दिया जाए। फ़ितरत के हर तक़ाज़े का ख़याल रखा जाए और ऊँचे दर्जे का एतिदाल चाहे न मिले मगर यहाँ कामयाबी के लिए बहरहाल एतिदाल ज़रूरी है। जितना भी वह एतिदाल के तयशुदा पैमाने से क़रीब होगा, उतना ही फ़ायदेमन्द होगा और जितना वह उससे दूर होगा उतना ही ज़िन्दगी की हक़ीक़तों से टकराकर नुक़सान का सबब बनेगा। दुनिया में आज तक जितना भी बिगाड़ हुआ है और आज फैला हुआ है इसी वजह से है कि असन्तुलित दिमाग़ों ने इनसानी समस्याओं को एक रुख़ से देखने और समझने की कोशिशें कीं। उनको हल करने के लिए असन्तुलित योजनाएँ

बनाईं और उनको लागू करने के लिए असन्तुलित तरीक़े अपनाए। यही बिगाड़ की अस्ल वजह है और बनाव का जो कुछ काम भी हो सकता है सोचने-समझने और रवय्ये के (सन्तुलन) एतिदाल ही से हो सकता है।

यही ख़ूबी ख़ास तौर पर बनाव और सुधार की उस स्कीम को लागू करने के लिए और भी ज़्यादा ज़रूरी है जो इस्लाम ने हमें दी है। क्योंकि वह अपने आप में ख़ुद एतिदाल (सन्तुलन) का बेहतरीन नमूना है। इसको किताबों के पन्नों से अमल की दुनिया में लाने के लिए तो ख़ास तौर से वही कारकुन (कार्यकर्ता) मुनासिब हो सकते हैं जिनकी नज़र इस्लाम के बनाव-सम्बन्धी नक़्शे की तरह सन्तुलित हो और जिनका मिज़ाज इस्लाम के इस्लाह के मिज़ाज की तरह सन्तुलित हो। एक इन्तिहा से दूसरी इन्तिहा अपनानेवाले लोग इस काम को बिगाड़ तो सकते हैं, बना नहीं सकते।

नतीजों के एतिबार से बेएतिदाली (असन्तुलन) का एक नुक़सान यह भी है कि वह आम तौर से नाकामी का सबब बनता है। निज़ामे-ज़िन्दगी में सुधार और बदलाव की कोई स्कीम भी लेकर आप उठें, आपकी कामयाबी के लिए सिर्फ़ यह बात काफ़ी नहीं है कि आप ख़ुद उसके सही होने पर मुत्मइन हों, बल्कि इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि आप अपने समाज के आम इनसानों को उसके सही, फ़ायदेमन्द और अमली होने पर मुत्मइन कर दें और अपनी तहरीक (आन्दोलन) को इस रूप में लाएँ और ऐसे तरीक़े से चलाएँ, जिससे लोगों की उम्मीदें और दिलचस्पियाँ उसके साथ जुड़ती चली जाएँ। यह बात सिर्फ़ उसी तहरीक के नसीब में हो सकती है जो सोच और नज़रिये के पहलू से भी सन्तुलित हो और अमली पहलू से भी सन्तुलित। एक इन्तिहापसन्दाना स्कीम जो इन्तिहापसन्दाना तरीक़ों से चलाई जाए, आम इनसानों में अपने लिए दिलचस्पी और उम्मीद पैदा करने के बजाय उनके अन्दर तरह-तरह के सवाल पैदा करती और उन्हें असन्तुष्ट बनाती है और उसकी यह ख़राबी ख़ुद ही उसकी पैग़ाम पहुँचाने और लोगों के अन्दर अपना असर पैदा करने की ताक़त को ख़त्म कर देती है। उसको बनाने और चलाने के लिए कुछ इन्तिहापसन्द लोग इकट्ठे हो भी जाएँ तो सारे समाज को अपने जैसा इन्तिहापसन्द बना लेना और दुनियाभर की आँखें हक़ीक़तों

से फेर देना कोई आसान काम नहीं है।

ख़ुद उस जमाअत के लिए भी यह चीज़ ज़हर कही जा सकती है जो सामाजिक सुधार और बनाव का कोई प्रोग्राम लेकर उठी हो।

एक-रुख़ापन

मिज़ाज की बेएतिदाली (असन्तुलन) जिस चीज़ से सबसे पहले ज़ाहिर होती है वह इनसान के ज़ेहन का एक-रुख़ापन है। इस कैफ़ियत में मुब्तला होकर आदमी आम तौर से हर चीज़ का एक रुख़ देखता है, दूसरा नहीं देखता। हर मामले में एक पहलू का लिहाज़ करता है, दूसरे किसी पहलू का लिहाज़ नहीं करता। एक दिशा जिसमें उसका ज़ेहन एक बार चल पड़ता है उसी की तरफ़ वह बढ़ता चला जाता है। दूसरी दिशाओं की ओर ध्यान देने के लिए वह तैयार नहीं होता। इससे मामलों को समझने में लगातार एक ख़ास तरह का असन्तुलन ज़ाहिर होता है। राय क़ायम करने में भी वह एक ही तरफ़ झुकता चला जाता है। जिस चीज़ को अहम समझ लेता है, बस उसी को पकड़ बैठता है। दूसरी वैसी ही अहम चीज़ें बल्कि उससे भी अहम चीज़ें उसके नज़दीक ग़ैर-अहम हो जाती हैं। जिस चीज़ को बुरा समझ लेता है उसी के पीछे पड़ जाता है, दूसरी वैसी ही बल्कि उससे ज़्यादा बड़ी बुराइयाँ उसके नज़दीक ध्यान देने के क़ाबिल नहीं होतीं। उसूल-परस्ती अपनाता है जड़ता की हद तक उसूल-परस्ती में शिद्दत दिखाने लगता है। काम के अमली तक़ाज़ों की कोई परवाह नहीं करता। अमल करने की तरफ़ झुकता है तो बेउसूली की हद तक अमली बन जाता है और कामयाबी ही को सब कुछ समझकर उसके लिए हर तरह के ज़रिए इस्तेमाल कर डालना चाहता है।

इन्तिहापसन्दी

यह कैफ़ियत अगर इस हद पर न रुक जाए तो आगे बढ़कर यह सख़्त इन्तिहापसन्दी (अतिवाद) का रुख़ ले लेती है। फिर आदमी अपनी राय पर ज़रूरत से ज़्यादा आग्रह करने लगता है। इख़्तिलाफ़ करने में शिद्दत बरतने लगता है। दूसरों के नज़रिये को इनसाफ़ के साथ न देखता है और न

समझने की कोशिश करता है। बल्कि हर मुख़ालिफ़ राय का बुरे-से-बुरा मतलब निकालकर उसे ठुकराना और नीचा दिखाना चाहता है। यह चीज़ दिन-प्रतिदिन उसे दूसरों के लिए और दूसरों को उसके लिए नाक़ाबिले-बर्दाश्त बनाती चली जाती है।

इस मक़ाम पर भी बेएतिदाली का रवय्या रुक जाए तो ख़ैरियत है, लेकिन अगर इसे ख़ूबी समझकर और ज़्यादा पाला-पोसा जाए तो फिर मामला बद मिज़ाजी, चिड़चिड़ेपन, तेज़ ज़बानी और दूसरों की नीयतों पर शक और हमलों तक पहुँच जाता है, जो किसी इज्तिमाई ज़िन्दगी में निभनेवाली चीज़ नहीं है।

इज्तिमाई बेएतिदाली

एक आदमी यह रवय्या अपनाए तो ज़्यादा-से-ज़्यादा इतना ही होगा कि वह अकेला जमाअत से कट जाएगा और उस मक़सद की ख़िदमत न कर सकेगा जिसकी ख़ातिर वह जमाअत से जुड़ा था। इससे कोई इज्तिमाई नुक़सान न होगा, मगर जब किसी इज्तिमाई शक्ल में बहुत-से असन्तुलित ज़ेहन और मिज़ाज जमा हो जाएँ तो फिर एक-एक प्रकार का असन्तुलन एक-एक टोली की शक्ल लेने लगता है। एक इन्तिहा के जवाब में दूसरी इन्तिहा जन्म लेती है। इख़्तिलाफ़ात बढ़ते और सख़्त होते चले जाते हैं। फूट पड़ती है, धड़ेबन्दी होती है और इस खींच-तान में वह काम ख़राब होकर रहता है जिसे बनाने के लिए बड़ी नेकनीयती के साथ कुछ लोग जमा हुए थे।

हक़ीक़त यह है कि जो काम हर एक की अलग-अलग कोशिशों से करने के नहीं होते, बल्कि जो मिल जुलकर ही करने के होते हैं, उन्हें करने के लिए बहरहाल बहुत-से लोगों को साथ मिलकर काम करना होता है। हर एक को अपनी बात समझानी और दूसरों की बात समझनी होती है। मिज़ाजों का अलग होना, क़ाबिलियतों का अलग होना, ज़ाती ख़ासियतों का अलग होना अपनी जगह रहता है। इसके बावजूद सबको आपस में तालमेल का एक ताल्लुक़ पैदा करना होता है, जिसके बिना कोई सहयोग नहीं हो सकता। इस

तालमेल के लिए नरमी और बरदाश्त ज़रूरी है, और यह नरमी सिर्फ़ सन्तुलित स्वभाव के लोगों ही में हो सकती है, जिनकी सोच भी सन्तुलित हो और मिज़ाज भी। सन्तुलित और असन्तुलित लोग भी जमा हो जाएँ तो ज़्यादा देर तक जमा नहीं रह सकते। उनकी एकता फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी, और जिन टुकड़ियों में बँटकर एक-एक प्रकार के असन्तुलित-रोगी जमा होंगे उनमें फिर फूट पड़ेगी यहाँ तक कि आख़िरकार एक-एक इमाम मुक़्तदियों के बिना ही खड़ा दिखाई देगा।

जिन लोगों को इस्लाम के लिए काम करना हो और जिन्हें जमा करनेवाली चीज़ इस्लामी उसूलों पर निज़ामे-ज़िन्दगी को सुधारने और बनाने का जज़्बा हो, उन्हें अपने दिल की हालत का जाइज़ा लेकर इस बेएतिदाली की हर शक्ल से ख़ुद भी बचना चाहिए और उनकी जमाअत को भी यह फ़िक्र होनी चाहिए कि उसके दायरे में यह रोग फूलने-फलने न पाए। इस सिलसिले में अल्लाह की किताब (क़ुरआन) और रसूल (सल्ल॰) की सुन्नत की वे हिदायतें उनके सामने रहनी चाहिएँ, जो इन्तिहापसन्दी और सख़्ती से मना करती हैं। क़ुरआन जिस चीज़ को अहले-किताब की बुनियादी ग़लती ठहराता है, वह दीन में हद से आगे बढ़ जाना है—

"ऐ अहले किताब! अपने दीन में ग़ुलू (अतिशयोक्ति) न करो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-77)

और इससे बचने की ताकीद नबी (सल्ल॰) मुसलमानों को इस तरह करते हैं—

"ख़बरदार! इन्तिहापसन्दी में न पड़ना क्योंकि तुमसे पहले के लोग दीन में इन्तिहापसन्दी में पड़कर ही तबाह हुए हैं।"

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक तक़रीर में तीन बार फ़रमाया—

"बरबाद हो गए सख़्ती अपनानेवाले, ग़ुलू और हद से ज़्यादा सोच-विचार से काम लेनेवाले।"

अपनी दावत की बुनियादी ख़ासियत नबी (सल्ल॰) ने यह बताई है कि मैं पिछली उम्मतों के असन्तुलन के बीच सन्तुलित दीन लेकर आया हूँ

जिसमें कुशादगी है और ज़िन्दगी के मामलों के हर पहलू का ख़याल रखा गया है। इस दावत के अलमबरदारों को जिस तरीक़े पर काम करना चाहिए, वह हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह सिखाया है—

"आसानी पैदा करो, तंगी पैदा न करो, ख़ुशख़बरी दो, नफ़रत न दिलाओ।"

"तुम सहूलत देने के लिए भेजे गए हो, तंग करने के लिए नहीं भेजे गए।"

"कभी ऐसा नहीं हुआ कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को दो मामलों में से एक के अपनाने का मौक़ा दिया गया हो और आप (सल्ल॰) ने उनमें से ज़्यादा आसान को न अपनाया हो, यह और बात है कि वह गुनाह हो।" (हदीस : बुख़ारी)

"अल्लाह नर्म मिज़ाज है और हर मामले में नर्म रवैये को पसन्द करता है।"

एक दूसरी जगह आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो नर्म मिज़ाजी से महरूम हुआ वह भलाई से बिलकुल महरूम हो गया।" (हदीस : मुस्लिम)

आप (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

"बेशक अल्लाह नर्म मिज़ाज है और नर्म मिज़ाज आदमी को पसन्द करता है, वह नर्मी पर वह कुछ देता है जो सख़्ती पर और किसी दूसरे रवैये पर नहीं देता।" (हदीस : मुस्लिम)

फ़ायदों से भरी इन हिदायतों को अपने सामने रखने के साथ इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी के लिए काम करनेवाले लोग अगर क़ुरआन व सुन्नत से अपने मतलब की चीज़ें छाँटने के बजाय अपने मिज़ाज और नज़रिये को उनके मुताबिक़ ढालने की आदत डालें तो उनके अन्दर आप-से-आप सन्तुलन और दरमियान का रास्ता अपनाने की वही सिफ़त पैदा होती चली जाएगी, जो दुनिया के हालात और मामलों को क़ुरआन व सुन्नत के दिए हुए नक़्शे पर दुरुस्त करने के लिए चाहिए होती है।

तंगदिली

मिज़ाज की बेएतिदाली से मिलती-जुलती एक और कमज़ोरी भी इनसान में होती है जिसे तंगदिली का नाम दिया जाता है। क़ुरआन में इसे "शुह्हे-नफ़्स" के अलफ़ाज से बयान किया गया है। क़ुरआन जिसके बारे में कहता है कि कामयाबी उस शख़्स के लिए है जो दिल की तंगी से बच गया—

"और जो अपने मन की तंगी से बचा लिया गया, तो ऐसे ही लोग कामयाब होनेवाले हैं।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-9)

और जिसे क़ुरआन तक़वा (परहेज़गारी) और एहसान के बरख़िलाफ़ एक ग़लत रुझान बताता है—

"नफ़्स (मन) तंगदिली की तरफ़ झुक जाते हैं। लेकिन अगर तुम लोग एहसान का रवैया अपनाओ और परहेज़गारी से काम लो तो (यक़ीन रखो कि) जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह उससे बेख़बर नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-128)

इस रोग का जो शख़्स शिकार हो, वह अपनी ज़िन्दगी के माहौल में दूसरों के लिए कम जगह छोड़ना चाहता है। वह ख़ुद जितना भी फैल जाए, अपनी जगह उसे तंग ही नज़र आती है और दूसरे जितने भी उसके लिए सिकुड़ जाएँ, उसे महसूस होता है कि वे बहुत फैले हुए हैं। अपने लिए वह हर रिआयत और छूट चाहता है मगर दूसरों के साथ कोई रिआयत नहीं कर सकता। अपनी ख़ूबियाँ उसके नज़दीक एक फ़ितरी ख़ूबियाँ होती हैं और दूसरों की ख़ूबियाँ महज़ एक इत्तिफ़ाक़ी हादसा। अपनी ख़राबियाँ और ग़लतियाँ उसकी नज़र में माफ़ी के क़ाबिल होती हैं, मगर दूसरों की ग़लती वह माफ़ नहीं कर सकता। अपनी मुश्किलों को तो वह मुश्किलें समझता है मगर दूसरे की मुश्किलें उसके ख़याल में महज़ बहाना होती हैं। अपनी कमज़ोरियों के लिए जो रिआयत वह ख़ुद चाहता है दूसरों को वह रिआयत देने के लिए तैयार नहीं होता। दूसरों की मजबूरियों की परवाह किए बग़ैर वह उनसे बढ़चढ़ कर माँगें करता है, जो ख़ुद अपनी मजबूरी की सूरत में वह

कभी पूरी न करे। अपनी पसन्द और अपना ज़ौक़ (रुचि) वह दूसरों पर ठूँसने की कोशिश करता है मगर दूसरों की पसन्द और उनके ज़ौक़ का लिहाज़ करना ज़रूरी नहीं समझता। यह चीज़ बढ़ती है तो आगे चलकर छोटी-छोटी मामूली ग़लतियों को पकड़ने और ढूँढ़-ढूँढ़कर कमियाँ निकालने का रूप लेती है। दूसरों की ज़रा-ज़रा-सी बातों पर आदमी गिरफ़्त करने लगता है और फिर जवाबी नुक्ताचीनी पर बिलबिला उठता है।

इसी तंगदिली की एक और शक्ल जल्द परेशान हो जाना, नकचढ़ापन और एक-दूसरे को बर्दाश्त न करना है, जो इज्तिमाई ज़िन्दगी में उस शख़्स के लिए भी मुसीबत है जो इसमें मुब्तला हो और उन लोगों के लिए भी मुसीबत है, जिन्हें ऐसे शख़्स से वास्ता पड़े।

किसी जमाअत के अन्दर इस बीमारी का घुस आना हक़ीक़त में एक ख़तरे की अलामत है, मिली-जुली कोशिश बहरहाल आपसी प्रेम और सहयोग चाहती है, जिसके बिना चार आदमी मिलकर भी काम नहीं कर सकते। मगर यह तंगदिली उसके इमकानात को कम ही नहीं, अकसर ख़त्म कर देती है। इसका लाज़िमी नतीजा ताल्लुक़ात की तल्ख़ी और आपसी नफ़रत है। यह दिलों को फ़ाड़ देनेवाली और साथियों को आपस में उलझा देनेवाली चीज़ है। इस रोग में जो लोग मुब्तला हों वे आम समाजी ज़िन्दगी के लिए भी मुनासिब नहीं हो सकते, किसी बड़े मक़सद की ख़िदमत के लिए मुनासिब होना तो दूर की बात है। ख़ास तौर से यह 'सिफ़त' उन सिफ़ात के बिलकुल ही उलट है इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी को क़ायम करने की जिद्दो-जुहद के लिए जिसकी ज़रूरत है। निज़ामे-ज़िन्दगी तंगदिली के बजाय कुशादादिली, गिरफ़्त के बजाय माफ़ी और सख़्ती के बजाय रिआयतें चाहती है। इसके लिए नर्म-मिज़ाज और सोच-समझकर काम लेनेवाले लोगों की ज़रूरत है। इसका बीड़ा वही लोग उठा सकते हैं जो बहुत बड़ा दिल रखते हों। जिनकी सख़्ती अपने लिए और नर्मी दूसरों के लिए हो, जो ख़ुद कम-से-कम रिआयत चाहें और दूसरों को ज़्यादा-से-ज़्यादा रिआयत दें। जो अपनी बुराइयों और दूसरों की ख़ूबियों पर निगाह रखें। जो तकलीफ़ देने के बजाय तकलीफ़ सहने के आदी हों और चलते हुओं को गिराने के बजाय गिरते हुओं को

थामने का बल-बूता रखते हों। जो जमाअत ऐसे लोगों से मिलकर बनी होगी, वह न सिर्फ़ ख़ुद आपस में मज़बूती के साथ जुड़ी रहेगी बल्कि अपने आसपास के समाज में भी बिखरे हुए हिस्सों को समेटती और अपने साथ जोड़ती चली जाएगी। इसके बरख़िलाफ़ तंगदिल और छिछले लोगों की भीड़ ख़ुद भी बिखरेगी और बाहर भी जिससे उसका सामना होगा, उसे नफ़रत दिलाकर अपने से दूर भगा देगी।

इरादे की कमज़ोरी

इनसानों में एक कमज़ोरी बहुत ज़्यादा पाई जाती है, जिसे हम इरादे की कमज़ोरी कह सकते हैं।

इसकी हक़ीक़त यह है कि इनसान एक तहरीक की दावत सुनकर सच्चे दिल से उसे क़बूल कर लेता है और शुरू-शुरू में काफ़ी जोश भी दिखाता है, मगर वक़्त गुज़रने के साथ उसकी दिलचस्पी कम होती चली जाती है। यहाँ तक कि उसे न उस मक़सद से कोई सच्चा लगाव बाक़ी रहता है, जिसकी ख़िदमत के लिए वह आगे बढ़ा था और न उस जमाअत के साथ उसका कोई अमली जुड़ाव बाक़ी रहता है, जिसमें वह दिल की चाहत के साथ शामिल हुआ था। उसका दिमाग़ पहले की तरह उन दलीलों पर मुत्मइन रहता है जिनकी बुनियाद पर उसने उस तहरीक को दुरुस्त माना था, उसकी ज़बान उसी तरह उसके सही होने का इक़रार करती रहती है, उसके दिल की गवाही भी यही रहती है कि यह काम करने का है और ज़रूर होना चाहिए। लेकिन उसके जज़बात ठण्डे पड़ जाते हैं और काम करनेवाले अंगों की रफ़्तार धीमी होती चली जाती है। इसमें किसी बदनीयती का ज़र्रा बराबर दख़ल नहीं होता, मक़सद से फिर जाना भी नहीं होता। नज़रिये में बदलाव भी बिलकुल आया हुआ नहीं होता। इसी वजह से आदमी जमाअत छोड़ने के बारे में भी नहीं सोचता, मगर बस वह इरादे की कमज़ोरी होती है जो शुरुआती जोश ठण्डा हो जाने के बाद अलग-अलग शक्लों में अपने करिश्मे दिखाने शुरू कर देती है।

इरादे की कमज़ोरी का पहला इज़हार कामचोरी के रूप में होता है।

आदमी ज़िम्मेदारियाँ क़बूल करने से जी चुराने लगता है। मक़सद की राह में वक़्त, मेहनत और माल ख़र्च करने से बचने लगता है। दुनिया के हर दूसरे काम को उस काम पर तरजीह (प्राथमिकता) देने लगता है, जिसे वह ज़िन्दगी का मक़सद बनाकर आया था। उसके वक़्तों में, उसकी मेहनतों में उसके माल में , उसके नाम-निहाद ज़िन्दगी के मक़सद का हिस्सा कम-से-कम होता चला जाता है और जिस जमाअत को वह सही जमाअत मानकर उससे जुड़ा था, उसके साथ भी वह सिर्फ़ ज़ाब्ते और नज़्म का ताल्लुक़ बाक़ी रखता है। उसके भले और बुरे से कोई मतलब नहीं रखता, न उसके मामलों में किसी तरह की दिलचस्पी लेता हैं।

यह हालत कुछ इस तरह धीरे-धीरे उसपर छाती है, जैसे जवानी या बुढ़ापा आता है। अगर आदमी अपनी इस कैफ़ियत पर न तो ख़ुद चौंके और न कोई दूसरा उसे ख़बरदार करे, तो किसी वक़्त भी यह सोचने की ज़रूरत महसूस नहीं करता कि जिस चीज़ को मैं अपनी ज़िन्दगी का मक़सद मानकर जान की बाज़ी लगाने के लिए उठा था उसके साथ अब यह सुलूक करने लगा हूँ। यूँ महज़ ग़फ़लत और बेख़बरी की हालत में आदमी की दिलचस्पी और वाबस्तगी बेजान होती चली जाती है, यहाँ तक कि किसी दिन बेख़बरी ही में वह अपनी फ़ितरी मौत मर जाता है।

जमाअती ज़िन्दगी में अगर पहले आदमी के अन्दर इस कैफ़ियत के ज़ाहिर होने का नोटिस न लिया जाए और उसको बढ़ने से रोकने की फ़िक्र न की जाए तो एक कमज़ोर इरादेवाले शख़्स की छूत दूसरे तमाम उन लोगों को लगना शुरू हो जाती है जिनके अन्दर इरादे की कमज़ोरी पैदा हो रही हो, ऊँघते को ठेलते का बहाना मिल जाता है। अच्छे ख़ासे सरगर्म आदमी दूसरे को काम न करते देखकर ख़ुद भी काम छोड़ बैठते हैं और कोई अल्लाह का बन्दा यह नहीं सोचता कि मैं किसी और के नहीं, ख़ुद अपनी ज़िन्दगी के मक़सद की ख़िदमत के लिए आया था। अगर दूसरे अपना मक़सद छोड़ चुके हैं तो मैं अपने मक़सद को क्यों छोड़ दूँ। उन लोगों की मिसाल उस शख़्स की-सी होती है जो सिर्फ़ इसलिए जन्नत के रास्ते पर चलना छोड़ दे कि दूसरे साथियों ने छोड़ दिया है। मानो जन्नत उसकी अपनी मनचाही

मंज़िल न थी या वह जन्नत में इस शर्त के साथ जाना चाहता था कि दूसरे भी वहाँ जाएँ, और शायद दूसरों ही के साथ जहन्नम जाने का इरादा भी करे, अगर उन्हें उस तरफ़ जाते देखे, क्योंकि उसका अपना मक़सद कोई नहीं है। जो दूसरों का मक़सद है वही उसका भी है। इस ज़ेहनी कैफ़ियत में मुब्तला हो जानेवाले लोग हमेशा काम न करनेवालों को मिसाल बनाते हैं, काम करनेवालों में उन्हें कोई ऐसी मिसाल नहीं मिलती जिसकी वे पैरवी करें।

फिर भी बहुत ग़नीमत है कि कोई शख़्स बस सीधे-सादे तरीक़े पर इरादे की कमज़ोरी की वजह से सुस्त पड़ जाए और सुस्त ही पड़कर रह जाए। लेकिन इनसानी फ़ितरत जब एक बार कमज़ोरी में मुब्तला हो जाती है तो दूसरी कमज़ोरियाँ भी उभरने लगती हैं और कम ही लोग ऐसा कर पाते हैं कि अपनी एक कमज़ोरी की मदद पर दूसरी कमज़ोरियों को न आने दें। आम तौर से आदमी को इसमें शर्म महसूस होती है कि वह अपने आपको एक कमज़ोर इनसान की हैसियत से ज़ाहिर करे या इसे बर्दाश्त कर ले जाए कि लोग कमज़ोर इनसान समझें। वह सीधी तरह यह नहीं मानता कि इरादे की कमज़ोरी ने उसे सुस्त कर दिया है। इसके बजाय वह इसपर परदा डालने के लिए अलग-अलग तरीक़े अपनाता है जिनमें से हर तरीक़ा दूसरे से बुरा होता है।

मसलन वह काम न करने के लिए तरह-तरह के बहाने करता है और आए दिन कोई-न-कोई बहाना पेश करके साथियों को यह धोखा देने की कोशिश करता है कि उसके काम न करने की अस्ल वजह मक़सद से लगाव और दिलचस्पी में कमी नहीं है, बल्कि सचमुच उसकी राह में रुकावटें हैं। यह मानो सुस्ती की मदद पर झूठ को बुलाना है, और यहाँ से उस आदमी की अख़लाक़ी गिरावट शुरू होती है जिसने शुरू-शुरू में सिर्फ़ तरक़्क़ी की बुलन्दियों पर चढ़ना छोड़ दिया था।

यह बहाना जब पुराना होकर बेकार साबित होने लगता है और आदमी को ख़तरा होता है कि अब अस्ल कमज़ोरी का राज़ खुलने ही वाला है तो वह यह ज़ाहिर करने की कोशिश करता है कि वह अस्ल में कमज़ोरी की

वजह से सुस्त नहीं हुआ है बल्कि जमाअत की कुछ ख़राबियों ने उसे बददिल कर दिया है। यानी आप खुद तो बहुत कुछ करना चाहते थे मगर क्या करें, साथियों के बिगाड़ ने दिल तोड़कर रख दिया। इस तरह यह गिरता हुआ इनसान जब एक क़दम नहीं जमा सकता तो और ज़्यादा नीचे उतर जाता है और अपनी कमज़ोरी को छिपाने की ख़ाहिश उसे यह ज़ुल्म अपनी गर्दन पर लेने पर आमादा कर देती है कि जिस काम को बनाने के क़ाबिल वह न रहा था उसे अब बिगाड़ने की कोशिश शुरू कर दे।

शुरुआती मरहले में यह बददिली का मामला साफ़ नहीं रहता, कुछ पता नहीं चलता कि जनाब क्यों बददिल हैं, ख़राबियों की ग़ैर-वाज़ेह शिकायतें दबी ज़बान से ज़ाहिर होती हैं, मगर उनकी कोई तफ़सील मालूम नहीं होती। साथी अगर हिकमत और सूझ-बूझ से काम लें और अस्ल रोग को समझकर उसका इलाज करने की फ़िक्र करें तो यह गिरता हुआ शख़्स और ज़्यादा गिरने से रुक भी सकता है और ऊपर उठाया भी जा सकता है। लेकिन अकसर नादान दोस्त कुछ ग़ैर-ज़रूरी जोश की वजह से और कुछ नई चीज़ों की खोज की अपनी आदत के तहत खोज-कुरेद शुरू कर देते हैं और उसे उसकी ग़ैर-वाज़ेह बातों की तफ़सील बयान करने पर मजबूर करते हैं। इसके बाद वह अपनी बददिली और मायूसी को सही साबित करने के लिए हर तरफ़ नज़र दौड़ाता है, अलग-अलग लोगों की ज़ाती कमज़ोरियाँ चुन-चुनकर जमा करता है। जमाअत का निज़ाम और उसके काम में ख़राबियाँ ढूँढ़ता है। और एक फ़ेहरिस्त बनाकर सामने रख देता है कि ये हैं वे ख़राबियाँ जिन्हें देख-देखकर आख़िरकार यह नाचीज़ बददिल हो गया है। यानी वह इस तरह दलील देता है कि मुझ जैसा तमाम ख़ूबियों से भरा मर्द, जो सब कमज़ोरियों से पाक था, इन कमज़ोर साथियों और इन ख़राबियों से भरी जमाअत के साथ किस तरह आगे चल सकता है, और दलील का यह तरीक़ा अपनाते वक़्त शैतान उसे यह बात भुला देता है कि अगर वाक़ई मामला यह था तो सुस्त पड़ने के बजाय यह तो और ज़्यादा सरगर्म होने का तक़ाज़ा करता था। जिस काम को आप अपनी ज़िन्दगी का अस्ल मक़सद ठहराकर पूरा करने के लिए उठे थे, उसे अगर दूसरे अपनी कमियों से बिगाड़ रहे थे तो आप ज़्यादा

जोश-ख़रोश के साथ उसे बनाने में लग जाते और अपनी ख़ूबियों से दूसरों की उन ख़राबियों की भरपाई करते। आपके घर में आग लग गई हो और घर के दूसरे लोग उसे बुझाने में ढिलाई बरतें तो आप बददिल होकर बैठ जाएँगे या जलते हुए घर को बचाने के लिए उन आलसियों से बढ़कर फुर्ती दिखाएँगे।

इस मामले का सबसे ज़्यादा अफ़सोसनाक पहलू यह होता है कि आदमी अपनी ग़लती पर परदा डालने और अपने आपको सही साबित करने की कोशिश में ख़ुद अपने आमालनामे का सारा हिसाब दूसरों के आमालनामे में लिख डालता है और भूल जाता है कि आमालनामों का एक रिकार्ड ऐसा भी है जिसमें किसी की मक्कारी से बाल-बराबर तबदीली नहीं की जा सकती। वह दूसरों के आमालनामे में बहुत-सी कमज़ोरियाँ गिनवाता है, जिनमें वह ख़ुद मुब्तला होता है। वह जमाअत के किरदार में बहुत सी उन ख़राबियों की निशानदेही करता है जिनके पैदा करने में उसका अपना हिस्सा दूसरों से कम नहीं, कुछ ज़्यादा ही होता है। वह उन कामों पर सिर से पैर तक शिकायत बना हुआ नज़र आता है, जो उसके अपने किए हुए होते हैं। और जब वह कहता है कि यह कुछ देखकर उसका दिल टूट गया है तो इसका मतलब साफ़ यह होता है कि इन सब चीज़ों से वह ख़ुद पूरी तरह अलग है।

कोई इनसानी जमाअत कमज़ोरियों से ख़ाली नहीं होती, न कोई इनसानी काम कमियों से पाक होता है। दुनिया में कभी ऐसा नहीं हुआ और न हो सकता है कि इनसानी समाज के सुधार और बनाव के लिए फ़रिश्ते दिए जाएँ और सारा काम बिना किसी कमी के पूरी तरह कर डालें, कमज़ोरियाँ ढूँढ़िए तो कहाँ न मिल जाएँगी, कमियाँ तलाश कीजिए तो किस जगह वे न पाई जाएँगी। इनसानी काम कमज़ोरियों और कमियों के साथ ही हुआ करते हैं और इन्तिहाई ऊँचे दर्जे तक पहुँचने की सारी कोशिशों के बावजूद किसी ऐसी हालत पर पहुँचने की कम-से-कम इस दुनिया में उम्मीद नहीं की जा सकती जहाँ इनसान और उसका काम हर कमी और कमज़ोरी से पाक-साफ़ हो जाए।

इस हालत में अगर कमज़ोरियों और कमियों की निशानदेही इस ग़रज़ से हो कि उन्हें दूर करने और सबसे ऊँचे दर्जे की तरफ़ बढ़ाने के लिए और ज़्यादा जिद्दो-जुहद की जाए तो इससे ज़्यादा मुबारक कोई काम नहीं। इनसानी कामों में जो सुधार और तरक़्क़ी भी मुमकिन है, इसी तरीक़े से मुमकिन है और इससे लापरवाही तबाह करनेवाली है, लेकिन अगर इन्फ़िरादी (व्यक्तिगत) कमज़ोरियाँ-और इज्तिमाई कमियाँ इसलिए तलाश की जाएँ कि उन्हें काम न करने और बददिल होकर बैठ जाने के लिए बहाना बनाना हो तो यह ख़ालिस शैतानी ख़याल और नफ़्से-अम्मारा (बुराई पर उभारनेवाली अन्दरूनी क़ुव्वत) की चाल है। यह बहाना बेहतर-से-बेहतर मुमकिन हालात में भी इनसान को मिल सकता है और इस बहाने को उस वक़्त तक ख़त्म नहीं किया जा सकता जब तक फ़रिश्तों की कोई टोली इनसानी जमाअतों की जगह लेने के लिए न आ जाए, और इस बहाने को पेश करना किसी ऐसे शख़्स को शोभा नहीं देता जो अपने आपको कमज़ोरियों और कमियों से पाक होने का सुबूत पेश न कर दे। इस तरह की बातों का नतीजा कभी यह नहीं होता कि कोई कमज़ोरी या कमी दूर हो जाए, बल्कि यह कमज़ोरियों और कमियों को बढ़ाने का अचूक नुस्ख़ा है। इसका नतीजा यह होता है कि एक शख़्स इसे अपनाकर अपने आसपास के दूसरे तमाम कमज़ोर इरादेवाले लोगों के लिए एक ग़लत मिसाल बन जाता है, वह उन सबको यह राह दिखाता है कि अपनी कमज़ोरी को मानकर नक्कू (अकेले) बनने से बचें, और अपने मन को भी धोखा देकर मुत्मइन करें। उसकी पैरवी में हर बेअमल आदमी बददिली का ढोंग रचाने लगता है और इस बददिली को दुरुस्त साबित करने के लिए साथियों की कमज़ोरियाँ और जमाअत की कमियाँ ढूँढ़-ढूँढ़कर एक फ़ेहरिस्त तैयार करनी शुरू कर देता है। फिर उससे बुराई का एक चक्र चल निकलता है। एक तरफ़ जमाअत में छोटी-छोटी ख़राबियाँ ढूँढ़ने और इलज़ाम और जवाबे-इलज़ाम की एक महामारी फूट पड़ती है, जो उसके अख़लाक़ी मिज़ाज (नैतिकता) का सत्यानाश कर देती है। दूसरी तरफ़ अच्छे-ख़ासे काम करनेवाले और मुख़लिस (निष्ठावान) आदमी जो किसी इरादे की कमज़ोरी का शिकार न थे,

कमज़ोरियों और कमियों की इस चर्चा से मुतास्सिर होकर बददिली का शिकार हो जाते हैं, और जब इस रोग की रोकथाम के लिए कुछ किया जाता है तो बददिलों का एक ब्लाक बनने लगता है। बददिली एक मसलक और तहरीक का रूप ले लेती है। बददिल होना, बददिल करना और बददिली की तरफ़दारी में दलीलें जुटाना अपनी जगह ख़ुद एक काम बन जाता है, और जो लोग अस्ल मक़सद के लिए काम करने में सुस्त हो चुके थे वे इस काम में ख़ूब चुस्ती दिखाने लगते हैं, यूँ उनकी मरी हुई दिलचस्पी ज़िन्दा होती है मगर इस शान के साथ कि उसका ज़िन्दा होना उसकी मौत से ज़्यादा अफ़सोसनाक होता है।

यह एक ख़तरा है जिससे हर उस जमाअत को ख़बरदार रहना चाहिए जो सुधार और बनाव की कोशिश के लिए उठे। और उसके कारकुनों और ज़िम्मेदारों को इरादे की कमज़ोरी के नुक़सानों और उसकी खुली हुई और ग़ैर-वाज़ेह सूरतों के फ़र्क़ और उनमें से हर एक के असरात और नतीजों से अच्छी तरह वाक़िफ़ होना चाहिए, और उसकी शुरुआती अलामत ज़ाहिर होते ही सुधार की फ़िक्र करनी चाहिए।

इरादे की कमज़ोरी की खुली अलामत यह है कि जमाअत में कोई शख़्स अमलन सुस्ती और दिलचस्पी में कमी दिखानी शुरू कर दे, इस सूरत के सामने आते ही कुछ तदबीरें अपनाई जानी चाहिएँ—

एक यह है कि ऐसे शख़्स के हालात की जाँच पड़ताल करके यह मालूम किया जाए कि उसकी सुस्ती की वजह क्या इरादे की कमज़ोरी ही है या कुछ हक़ीक़ी मुश्किलें हैं, जो उसे सुस्त कर रही हैं। अगर सचमुच कुछ मुश्किलें पाई जाएँ तो जमाअत को उनके बारे में मालूम होना चाहिए ताकि उन्हें दूर करने में एक साथी की मदद भी की जाए और उसकी सुस्ती से दूसरे लोग कोई ग़लत मतलब न निकाल सकें, न वह किसी के लिए ग़लत मिसाल बने। और अगर अस्ल वजह इरादे की कमज़ोरी ही साबित हो तो भौंडे तरीक़ों से बचते हुए हिकमत और सूझ-बूझ के साथ ऐसे शख़्स के मामले को जमाअत के सामने उन लोगों के मामले से बिलकुल अलग होकर आ जाना चाहिए, जो हक़ीक़ी मुश्किलों की वजह से काम में सरगर्म न हों।

दूसरे यह कि कमज़ोर इरादेवाले आदमी की हालत, जिस वक़्त भी पता चले, उसकी कमज़ोरी को समझाने-बुझाने और नसीहत के ज़रिए से दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। ख़ास तौर से जमाअत के बेहतर आदमियों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए कि उसके मरते हुए जज़बे को उभारें और अमलन उसे अपने साथ लगाकर हरकत में लाने की कोशिश करें।

तीसरे यह कि ऐसे शख़्स को टोकते रहना चाहिए ताकि जमाअत में इस तरह की सुस्ती और बेअमली एक आम चीज़ न बन जाएं और दूसरे लोग एक-दूसरे का सहारा लेकर बैठते न चले जाएँ और जमाअत के अन्दर समय-समय पर इस बात की जाँच होती रहे कि कौन वक़्त, मेहनत और माल की कितनी क़ुरबानी दे सकता है और कितनी दे रहा है और किसका काम उसकी हक़ीक़ी सलाहियत से क्या ताल्लुक़ रखता है, तो फिर यह उस शख़्स के लिए किसी-न-किसी हद तक शर्मिन्दगी का सबब होगा जो जाँच के तराज़ू में हल्का उतर रहा हो और यह शर्मिन्दगी लोगों को सुस्त पड़ने से रोकती रहेगी। लेकिन यह पूछ-गच्छ इस अन्दाज में न होनी चाहिए कि इरादे की खुली कमज़ोरी का रोगी मुरक्कब इरादे की कमज़ोरी में मुब्तला हो जाए। हिकमत का तक़ाज़ा यह है कि एक शख़्स में जो कमज़ोरी पैदा हो रही है अगर उसे दूर न किया जा सके तो कम-से-कम बढ़ने भी न दिया जाए। नादानी के साथ ज़रूरत से ज़्यादा जोश दिखाने का नतीजा यह होता है कि बुराई में पड़ा हुआ आदमी उससे ज़्यादा बड़ी बुराई की तरफ़ ज़बरदस्ती धकेल दिया जाता है।

इरादे की मुरक्कब कमज़ोरी यह है कि आदमी अपनी कमज़ोरी पर झूठ और मक्कारी के पर्दे डालने की कोशिश करे और बढ़ते-बढ़ते यह साबित करने की कोशिश पर उतर आए कि ख़राबी उसमें नहीं है बल्कि जमाअत में है। यह सिर्फ़ एक कमज़ोरी नहीं है बल्कि एक बदअख़लाक़ी (अनैतिकता) है, जिसे किसी ऐसी जमाअत में फूलने-फलने न देना चाहिए जो अख़लाक़ी बुनियादों ही पर दुनिया का सुधार करना चाहती हो।

इसका पहला दर्जा यह है कि आदमी काम न करने के लिए झूठे और बेबुनियाद बहाने पेश करे। इस चीज़ की अनदेखी करना ख़ुद उस शख़्स से

भी बेवफ़ाई है जिसमें यह अख़लाक़ी बुराई उभरती आ रही हो और उस जमाअत से भी बेवफ़ाई है जिसके साथ बहुत-से लोगों ने एक बड़े मक़सद की ख़ातिर जान-माल की बाज़ी लगाई हो। ऐसी जमाअत में शरीक होनेवाले हर शख़्स के अन्दर कम-से-कम इतनी अख़लाक़ी जुर्अत (नैतिक साहस) और ज़मीर (अन्तरात्मा) की ज़िन्दगी होनी चाहिए कि अगर अपने जज़्बे की कमज़ोरी के सबब वह काम न करे तो साफ़-साफ़ अपनी कमज़ोरी को मान ले। ग़लती मान लेने के साथ एक शख़्स का उम्र भर उस कमज़ोरी में मुब्तला रहना इससे कई गुना बेहतर है कि वह एक बार भी उसको छिपाने के लिए झूठे बहानों से मदद ले। यह ख़राबी जब भी सामने आए उसपर मलामत (निन्दा) की जानी चाहिए, कभी उसकी हौसला-अफ़ज़ाई न की जानी चाहिए। अकेले में मलामत करने पर वह इस तरीक़े से बाज़ न आए तो खुल्लम-खुल्ला जमाअत में उसे मलामत की जाए। और उन बहानों की हक़ीक़त खोल दी जाए जिन्हें वह अपने लिए दलील बना रहा हो। इसमें ढिलाई बरतने का मतलब यह है जमाअत के अन्दर उन ख़राबियों का दरवाज़ा खोल दिया जाए, जिनकी तफ़सील हम अभी ऊपर बयान कर आए हैं।

इसका दूसरा दर्जा यह है कि एक कामचोर और आलसी आदमी अपनी इस हालत के लिए जमाअत के लोगों की कमज़ोरियों और जमाअत के काम और निज़ाम की कमियों को ज़िम्मेदार ठहराए और उन्हें अपनी बददिली की वजह बताए। यह अस्ल में ख़तरे की लाल झण्डी है, जो इस बात का पता देती है कि अब यह शख़्स फ़ितना फैलाने की तरफ़ बढ़ रहा है। इस मौक़े पर उससे बददिली के असबाब की तफ़सील पूछना ग़लत है। यह सवाल उससे करने का मतलब यह है कि उसे इस फ़ितने के रास्ते पर चला दिया जाए, जिसके सिरे पर वह अभी पहुँचा है। यहाँ उसे दूसरों की कमियाँ निकालने की आम इजाज़त देने के बजाय उसके दोस्तों को उसे ख़ुदा से डराना चाहिए और उसको शर्म दिलानी चाहिए कि ख़ुद एक अधूरा कारनामा और कच्चा किरदार लेकर वह किस मुँह से दूसरों को मलामत करने की जसारत (दुस्साहस) कर रहा है। मेहनत करनेवाले, ख़िदमत में सरगर्मी दिखानेवाले, वक़्त और माल की क़ुरबानी देनेवाले अगर तेरे काम में ढिलाई

बरतने को अपने लिए बददिली का सबब ठहराएँ तो सही होंगे, मगर तू कहाँ बददिली का रूप धारण करने चला है, जबकि बददिल करनेवाली ख़राबियों को पैदा करने में तेरा अपना हिस्सा दूसरों से बढ़कर ही है और काम ख़राब करने में तेरा अपना अमल दूसरों के लिए मिसाल बन रहा है। इसमें शक नहीं कि अपनी तमाम कमज़ोरियाँ और कमियाँ जमाअत की जानकारी में ज़रूर आनी चाहिएँ और जमाअत को भी कभी उनके जानने से कतराना और उनके सुधार की कोशिश से मुँह न मोड़ना चाहिए, लेकिन उन्हें बयान करना जमाअत के उन सरगर्म ख़ादिमों का काम है जो सबसे बढ़कर ख़िदमत में जान लड़ानेवाले हों, वही इसका हक़ रखते हैं और वही ईमानदारी के साथ तंक़ीद भी कर सकते हैं। किसी अख़लाक़ी तहरीक में इस बेहयाई की हिम्मत-अफ़ज़ाई न की जानी चाहिए कि कामचोर लोग जो काम में सुस्त और किरदार में कच्चे हों, वे लम्बी ज़बान लेकर जमाअत की कमियाँ और कमज़ोरियाँ बयान करने लगें। ऐसी जमाअत में उनकी सही जगह शर्मिन्दगी और ग़लती को मानने की है, आलोचक और सुधारक की नहीं। इस मक़ाम पर अगर वे ख़ुद आकर खड़े हों तो यह सख़्त अख़लाक़ी बीमारी की अलामत है और अगर जमाअत में उनके लिए यह मक़ाम क़बूल कर लिया जाए तो इसका मतलब यह है कि जमाअत पर अख़लाक़ी दिवालियापन छा रहा है।

इस सिलसिले में यह उसूली बात ज़ेहन में रहनी चाहिए कि लोगों को हरकत में लानेवाली और ख़ुद हरकत में रहनेवाली एक जमाअत के लिए उसके सेहतमन्द लोगों के एहसासात कुछ और मानी रखते हैं और बीमार लोगों के एहसासात कुछ और मतलब। उसके सेहतमन्द लोग वे हैं जो अपने काम की धुन में लगे हुए हों, अपना तन-मन-धन सब कुछ उन्होंने इस काम में लगा दिया हो और जिनके कामों का रिकार्ड यह बता रहा हो कि वे अपनी कोशिश और ताक़त-भर ख़िदमत में कोई कमी नहीं कर रहे हैं। बीमार लोग वे हैं जिन्होंने कभी अपनी ताक़त के मुताबिक ख़िदमत का हक़ अदा न किया हो या जो कुछ समय तक सरगर्म रहने के बाद ठण्डे पड़ चुके हों और जिनके कामों का रिकार्ड उनकी कमियों का खुला सुबूत दे रहा हो। इन दोनों के एहसासात में वही फ़र्क़ है जो तन्दुरुस्त आँख और बीमार आँख में होता

है। जमाअत अपनी कमज़ोरियों और कमियों का अगर सही अन्दाज़ा कर सकती है तो सिर्फ़ अपने लोगों के एहसासात के ज़रिए से कर सकती है। वे लोग जो काम न कर रहे हों और काम छोड़ने के लिए अपनी बददिली ख़ुद ज़ाहिर कर रहे हों कभी इसका भरोसेमन्द ज़रिआ नहीं बन सकते। उनके एहसासात अगर सौ फ़ीसद नहीं तो अस्सी-नब्बे फ़ीसद भटकानेवाले होंगे, और जो जमाअत ख़ुद को ख़त्म न करना चाहती हो वह हरगिज़ उनके दिए हुए एहसासात पर अपने नतीजों की बुनियाद नहीं रख सकती। यह समझना कि कमियाँ और कमज़ोरियाँ, जो भी सामने लाकर रख दे, बस गिड़गिड़ाकर हमें उसके आगे तौबा करना और माफ़ी माँगना शुरू कर देना चाहिए और फिर उन्हीं पर अपने अन्दाज़ों की बुनियाद रखकर यह फ़ैसला भी कर डालना चाहिए कि हम क्या कुछ करने के क़ाबिल हैं और क्या कुछ करने के क़ाबिल नहीं। यह कोई नेकी हो तो हो, मगर अक़्लमन्दों की नहीं, सीधे-सादे और भोले-भाले लोगों की नेकी है और दुनिया में इस तरह के नेक लोगों ने न पहले कुछ बनाया है और न अब कुछ बना सकते हैं। अपने कमाल के दंभ में पड़ जाना जितनी बड़ी नादानी है, उससे कुछ कम यह नादानी नहीं कि अपनी कमियों और काम करने की ताक़त का अन्दाज़ा हर ऐरे-ग़ैरे के बयान पर कर डाला जाए और यह न देखा जाए कि बयान करनेवाला किस हद तक सही सूरते-हाल समझने और बयान करने के क़ाबिल है।

एक और बात जो इस मक़ाम पर ख़ूब समझ लेने की है, वह यह है कि एक मक़सद के लिए काम करनेवाली जमाअत को अपने सामने अख़लाक़ और काम की सलाहियत के दो मेयार (पैमाने) रखने होते हैं। एक मेयार-मतलूब यानी वह इन्तिहाई ऊँचा पैमाना जिस तक पहुँचने की लगातार जिद्दो-जुहद जारी रहनी चाहिए। दूसरा कम-से-कम के क़ाबिल होने का पैमाना, जिसको लेकर काम चलाया जा सकता हो और जिससे नीचे गिर जाना बर्दाश्त के क़ाबिल न हो, इन दोनों तरह के पैमानों के मामले में अलग-अलग ज़ेहनों के लोग अलग-अलग तर्ज़े-अमल अपनाते हैं।

एक ज़ेहन अस्ल मक़सद के लिए काम करने को कुछ भी अहमियत नहीं

देता। काम बने या बिगड़े या बिलकुल ख़त्म हो जाए। यह उसके लिए कोई ज़िन्दगी और मौत का मसला नहीं होता। वह इस काम को छोड़कर भी मज़े से जी सकता है और काम में शरीक रहकर भी इस तरह भागीदारी निभा सकता है कि उसके वक़्त, माल और क़ुव्वतों को कोई नुक़सान न पहुँचने पाए। यह ज़ेहन अकसर ख़यालात व नज़रियात की अय्याशी के तौर पर और कभी अपने बचाव के लिए लुभावनी बहानेबाज़ी के तौर पर अख़लाक़ के आसमानों पर उड़ता है और मेयारे-मतलूब से कम पर किसी तरह मुत्मइन नहीं होता। उससे कम जो कुछ भी नज़र आता है उसपर वह बड़ी बेचैनी और बददिली का इज़हार करता है, मगर यह बेचैनी काम के लिए नहीं काम से भागने के लिए होती है, चाहे यह भागने की ज़ेहनियत उसने सोच-समझकर अपनाई हो या बेसमझे-बूझे।

दूसरा ज़ेहन अगरचे मक़सद और उसके काम करने को बड़ी अहमियत, बल्कि पूरी अहमियत देता है, मगर ख़यालों में उड़ने की वजह से मेयारे-मतलूब का ठीक-ठीक ध्यान नहीं रखता, यह ख़ुद भी बार-बार उलझन में पड़ता है और पहली तरह के ज़ेहन की छूत बड़ी आसानी से उसको लग जाती है। इस तरह वह अपने आपको भी परेशान करता है और काम करनेवालों के लिए भी अच्छी-ख़ासी परेशानियों का सबब बन जाता है।

तीसरा ज़ेहन वह होता है जिसे मक़सद के लिए काम करना और काम चलाना होता है और जिसे इस काम के बनाव और बिगाड़ की पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर होने का एहसास होता है। उसे उसका मक़ाम ख़ुद ही इस बात पर मजबूर करता है कि हर वक़्त दोनों तरह के पैमानों के फ़र्क़ का पूरा-पूरा ख़याल रखते हुए काम करे और यह देखता रहे कि मक़सद की तरफ़ बढ़ने की रफ़्तार किसी सही और वज़नी वजह के बग़ैर मुतास्सिर न हो। वह मतलूब पैमाने को कभी भूलता नहीं है। उस तक पहुँचने की फ़िक्र से भी बेपरवा नहीं होता। उससे गिरी हुई हर चीज़ पर बहुत फ़िक्रमन्द हो जाता है। मगर कम-से-कम काम के पैमाने से काम चलाता रहता है और उस सतह से गिर जानेवाले लोगों की वजह से अपनी योजना बदलने के बजाय उन्हें हटाकर फेंक देना ज़्यादा पसन्द करता है। इसके लिए अपनी ताक़त का सही

अन्दाज़ा लगाना और उसके मुताबिक़ काम के फैलाव और उसकी रफ़्तार में कमी-बेशी करना तो बेशक ज़रूरी है। इसमें वह ग़लती कर जाए तो अपने मक़सद को नुक़सान पहुँचा दे, लेकिन सख़्त नादान होगा वह शख़्स जो इस चीज़ का अन्दाज़ा लगाने में पहली और दूसरी तरह के ज़ेहनों से रहनुमाई हासिल करे। इसके लिए अगर मददगार हो सकते हैं तो तीसरी तरह के ज़ेहन ही हो सकते हैं और उनकी पहचान उसे होनी चाहिए।

◆◆◆